संध्या के गीत

कस्तूरी

संध्या के गीत

कस्तूरी

[illegible] : 1995

1000 प्रतियाँ

[illegible] : 40/- रुपये

[illegible] : श्री जी. डी. चतुर्वेदी
सी. 830–A, पारिजात
एच – रोड, महानगर
लखनऊ

[illegible] शिवम् आर्ट्स
211, पाँचवीं गली
निशातगंज, लखनऊ

सूची

गीत सँख्या	गीत	पृष्ठ
	दो–शब्द	
1	वह जीवन क्या?	1
2	मेरे बाबू जी महाराज	2
3	मरण त्यौहार	3
4	अपनी झलक	5
5	जोगिन चली पिया के देश	5
6	वैराग्य	6
7	अनुपम–दर्शन	7
8	पंछी	8
9	नैंन फोरि कहं जाना	10
10	मोरे राम–राम दोऊ अंखियाँ	11
11	समर्थ सद्गुरु श्री लाला जी साहब के उदार चरणारविंन्दों में	12
12	अब सत्य हुआ मेरा सपना	14
13	जिनके हृदय श्री बाबू जी हैं	17
14	अरे, ये किसने हमें बुलाया	19
15	प्रेमी बहुतेरे, प्रेम निभाने वाला कोई–कोई	21
16	अनुपम हैं, अनूठे हैं, श्री बाबू जी हमारे हैं,	23
17	आये हैं हमारे बाबू जी	26
18	जलता है दीप लाला का	28
19	तुम्हारी याद में दुनियाँ	31
20	क्या कहें समझें न कुछ	32
21	समझ में न आये कि तुम और क्या हो	35
22	ओ बाबू जी! जो तेरे चरणों में आ गए	37
23	लोग क्या जाने क्यों।	40
24	आज हमारे घर आँगन में	42
25	बाबू तुम्हारा जन्म–दिन मिल कर मनायें हम	43
26	याद में भर आये तुम	46
27	तू मेरा आज कहूं मैं कैसे	49
28	कितनी दूर रहे मंजिल से	52

29	अपने प्यारे बाबू जी का	53
30	रहें तो ऐसे कि जैसे मिशन हमारा है	56
31	ये कौन धरा पर आये हैं	59
32	श्री बाबू जी हमारे हैं	61
33	बसन्त आया क्या है लाया	64
34	आप मुस्काते रहें दीदार हम पाते रहें	68
35	हम तो दिल को लुटाये जाते हैं	71
	मद्रास में ताः 30-4-95 पर दिए गए भाषण का सारांश	74
	Gist of speech at Madras	76

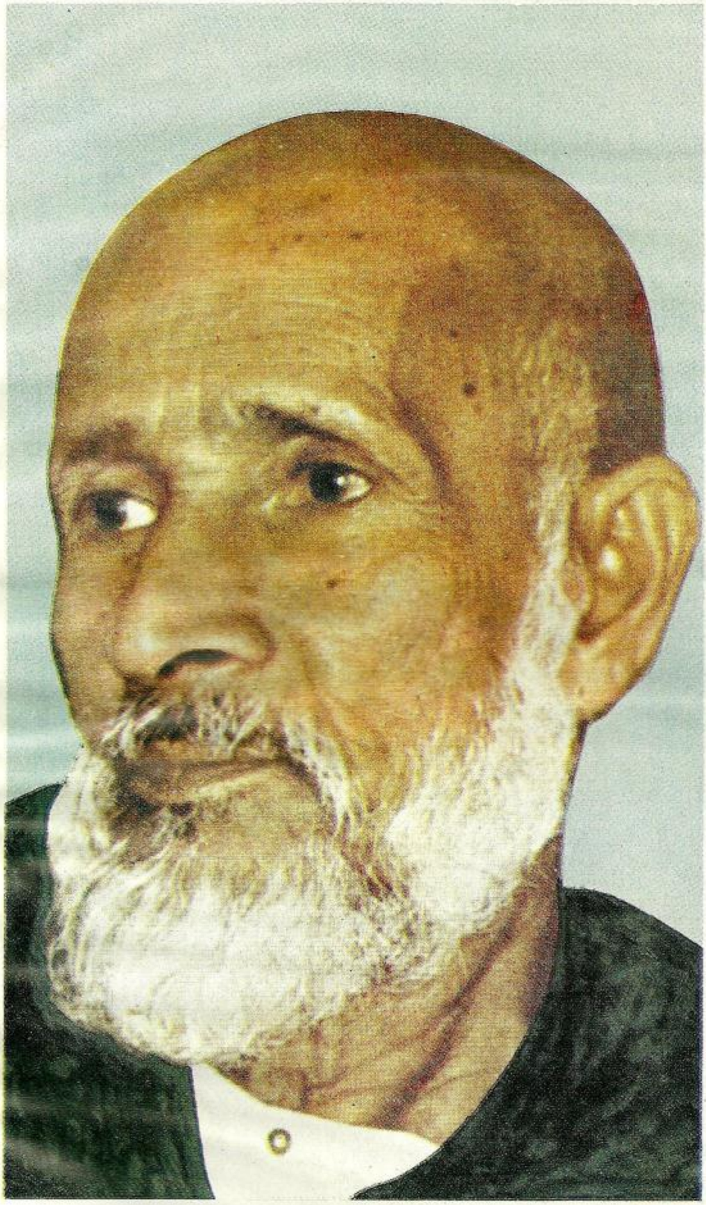

श्री राम चन्द्र जी महाराज

शाहजहाँपुर (उत्तर प्रदेश)

कु० कस्तूरी चतुर्वेदी

दो–शब्द

बहुत समय से भाई प्रसाद जी एवं मेरे छोटे भाई श्री. पी. डी. चतुर्वेदी मुझसे आग्रह कर रहे थे कि "आप अपने गीतों का अर्थ आध्यात्मिक–दशाओं के अनुरूप लिख दें नहीं तो 'कबीर जी' की तरह ही आपके गीतों का भी अर्थ मानव के लिए कभी स्पष्ट नहीं हो पायेगा। आध्यात्मिक दशाओं की रसानुभूति न होने के कारण बहुधा अर्थ का अनर्थ भी हो जायेगा।" अतः आज इस छोटी सी पुस्तिका में अपने श्री बाबू जी महाराज द्वारा अन्तर में प्रदान की गई आध्यात्मिक उन्नति की हर दशा की रसानुभूतियों को ज्यों का त्यों गीतों के रूप में उभारने का प्रयत्न किया है। यह तो मेरे बाबू जी की अनन्य कृपा है कि वर्षों पहले के लिखे गीतों की व्याख्या स्पष्ट करते समय आज भी मेरे समक्ष हर गीत की रसानुभूति कुछ इस प्रकार से ताज़ा हो उठती है मानों इसका आनन्द मुझे अभी मिल रहा है।

अब मैं अपने सत्संग में अपने हर अभ्यासी भाई–बहन के सामने यह सत्य स्पष्ट कर देती हूं कि पहले जब श्री बाबू जी महाराज के पत्रोत्तर मुझे मिलते थे या जो पुस्तकें मैंने वर्षों पहले लिखी थीं तो भी मुझे यही लगता था कि मानों तब मुझे कुछ अधिक समझ थी किन्तु अब जो कुछ मेरी लेखिनी लिखती है, लगातार यही लगता है कि वे लेखन को मेरे समक्ष प्रत्यक्ष न उतारें (दिखायें) तो मैं अपनी समझ के भरोसे कुछ भी नहीं लिख सकती हूं। अब मेरी हालत ऐसी हो गयी है कि जैसे नन्हें से बालक को यदि 'अ' से अमरूद पढ़ाते समय 'अमरूद'की फोटो न दिखाई जाये तो वह समझ नहीं पाता है कि 'अ' और 'अमरूद' क्या है। यही दशा मेरी है कि दशा को चित्र रूप में समझ में उतारते हुए, मेरी लेखिनी की यही पूर्ण ज़िम्मेदारी लिए हुए उन्होंने ही इस पूरी पुस्तक को लिखाया है, तभी तो आज यह अलौकिक आश्चर्य मुझे है कि वर्षों पहले पार की हुई गतियों को समक्ष में फैली हुई देखते हुए और और उन रसानुभूतियों का आनन्द लेते हुए ही गीतों की इस पुस्तिका के प्रथम भाग का लेखन आरम्भ हुआ है।

अब तो पाठक गण समझ जायेंगे कि मेरी पुस्तकों के लेखन का वास्तविक मालिक कौन है? गीतों में मेरे 'कस्तूरी' नाम के बजाय 'संध्या' उपनाम मेरे परम प्रिय श्री बाबू जी महाराज ने ही दिया है। उन्होनें स्वयं ही समस्या पूर्ति हेतु एक पंक्ति दी "वह हिम्मत क्या जिस हिम्मत से अपने को आप उठा न सके"। यही पंक्ति मेरे प्रथम गीत को लिखाने वाली है। उस समय आपने कहा था कि 'बिटिया! गीतों में तुम्हारा 'कस्तूरी' नाम ठीक (फ़िट) नहीं बैठेगा अतः तुम 'संध्या' नाम से गीत लिखना ।' यही कारण है कि उनका दिया हुआ शुभ उपनाम उनकी इस बिटिया के गीतों को अग्रसर कर रहा है।

– कस्तूरी

वह जीवन क्या?

(अक्टूबर-1956)

वह जीवन क्या जिस जीवन में, जीवन को मुक्त बना न सके।
सब जीवन ऐसेहि बीत गयो
प्रभु को नहिं ठौर दियो हिय में,
वह पूजन क्या जिस पूजन से, हृदय को शून्य बना न सके।।
सब रैन गई अब रोहिणी लागी,
जागो मन नैकु विचार करो
अब नाँहि गवाँओ जग झूठा है, सुन्दर, योगेश्वर आय गयो।।
अब रैन कहाँ जो सोवत है,
उठ, ठौर कहाँ जो रोवत है,
वह हिम्मत क्या, जिस हिम्मत से, अपने को आप उठा न सके।।
चहुं ओर बजी दुन्दुभि, 'सन्ध्या,'
आकाश से पुष्प झरे प्रतिक्षन,
चल सुन्दर मूर्ति निहार रे मन, अनुपम सद्‌गुरु अवतार लियो।।

व्याख्याः-

सहज मार्ग में पूजा आरम्भ करने के पहले मेरे मन में आध्यात्मिक-उन्नति का उच्चतर स्तर 'जीवन मुक्त' अवस्था ही था और मेरे मन में दर्शन की चाह भी थी। एक बार दक्षिण-भारत की यात्रा पर अपने श्री बाबू जी महाराज के साथ जा रही थी। उन्हें न जाने क्या मौज आई कि बोले " मैं तुम्हें एक समस्या देता हूं इस पर गीत बनाना।" समस्या थी "वह हिम्मत ही क्या है जिससे आदमी स्वयं को न उठा सके।" मैने इसे नोट कर लिया। दूसरे दिन ट्रेन में ही मैंने जो गीत सुनाया-यह वही गीत है जो ऊपर लिखा हुआ है। गीत का अर्थ सरल है। दशा के साथ इसका सार निम्न है- कहते हैं कि अनेक प्रकार की पूजायें करते-करते ही यह जीवन बीता जाता है पर जिसको पाने के लिए हम पूजा करते हैं उस भगवान के दर्शन की चाह मन में नहीं ठहर पाती है बल्कि पूजा करते रहने की ही चाह बढ़ती है जब कि अब मैं पा रही हूं कि अब हमारा हृदय अन्य बातों के साथ ही पूजा के शौक से भी शून्य होने लगता है क्योंकि दर्शन की चाह, मन में उसको पाने की चाह के अतिरिक्त किसी चाह को ठहरने ही नहीं देती है। आज सहज मार्ग साधना ने मानो रोहिणी नक्षत्र (जिसमें भगवान श्री कृष्ण का जन्म हुआ था) को जगा दिया है इसलिए अब भौतिक अन्धकार दूर हो गया है। मन की चाह में अब कुरेदना जन्म ले रही है तो वह पुकारती है कि "मन अब जाग उठो और विचार करो कि अब हमारे लिए सुन्दर योगेश्वर श्री बाबू जी

के रूप में आ गए हैं। अब अगर हममें हिम्मत है तो इस हिम्मत से हम अपने को ऊपर उठाते चलें।"

यह गीत तभी लिखा गया था जब मुझे हर समय ऐसा अनुभव होता था कि मेरा नाता कहीं ऊपर से जुड़ गया है। श्री बाबू जी ने मुझे लिखा था कि 'आध्यात्मिकता का मज़ा तो तभी शुरू होता है जब मन की गति ऊर्ध्वमुखी हो जावे और 'मालिक' ने तुम्हें यह हालत बख्शी है।" दूसरी गहन बात इस दशा से सम्बंधित यह है कि इस दशा के आते ही श्री बाबू जी ने मुझे लिखा था कि 'अब मेरा गुरू पद का कार्य या शिक्षा समाप्त हो गयी है क्योंकि आत्मा परमात्मा में मिल जाने को तरस उठी थी। इसी कारण तबसे ही मैंने उन्हें सदगुरू के रूप में ही पाया। सत् (ईश्वर) गुरू अर्थात जो ईश्वर से मिलाने की बारीकियों को जानता हो और तभी कलम ने उन्हें 'सद्गुरु' श्री बाबू जी के नाम से लिखना प्रारम्भ कर दिया।

'संध्या' कहती है कि मेरे बाबू जी जबसे मैंने इस दशा को प्राप्त किया है कि आप मेरे सद्‌गुरू हैं, उसके बाद से ही मुझे ऐसा लगता है कि मन की ऊर्ध्वमुखी वृत्ति यह सुन पा रही है कि इस लोक से जहाँ की दशा से मेरी इस दशा का सम्बन्ध अब हो गया था, चारों ओर दुन्दुभि की भाँति यही ध्वनि सुनाई पड़ रही है कि अब इस वर्तमान दशा के पश्चात् ही तू यह अनुभूति भी प्राप्त कर सकेगी अब हिम्मत है तो इस विभूति का वह दर्शन भी प्राप्त कर कि जहाँ तुझे यह पता चल जायेगा कि यह दिव्य-विभूति अनुपमेय है।

गीत संख्या-2

मेरे बाबू जी महाराज

(जून-1957)

बाबू जी महाराज मेरे बाबू जी महाराज।
नैनों में तुझको ही बसाऊं, श्वांस-श्वांस की गति में पाऊं,
वाणी के जु सुहाग, मेरे बाबू जी महाराज।।
कर्ण कुहर में ध्वनि यह पाऊं, ओंकार के बीच रमाऊं,
निशिदिन याही काज, मेरे बाबू जी महाराज।।
आवे पथिक ताहि ले आऊं, बाबू के सन्देश सुनाऊं,
पायो अविचल राज, मेरे बाबू जी महाराज।।
घर न समाऊं, बाहर न जाऊं, जोगिन-जोगिन कोऊ कहाऊं,
भक्ति दान देहु आज, मेरे बाबू जी महाराज।।
नाच-नाच के ताहि रिझाऊं, संध्या यह संगीत सुनाऊं,
पूरन-ब्रह्म सिरताज, मेरे बाबू जी महाराज।।

व्याख्याः–

कवियित्री का कथन है कि ओ श्री बाबू जी महाराज! अब न जाने क्यों मेरी आँखों के आगे मात्र तुम ही विराज रहे हो शायद इसलिए कि साक्षात्कार की बारीकियों को समझ कर हमें उन तक पहुंचाने आप ही आये हैं। अब तो यह दशा हो गयी है कि हर श्वांस को गति देने वाले मानों आप ही हैं। इतना ही नहीं वाणी भी आपके गुणानुवादों को गाते हुए मानों सौभाग्यवती बन गई है। आपने मुझे अब यह दशा भी प्रदान कर दी है कि स्वतः ही मानों प्राण के हर स्पन्दन में पावन 'ॐ' की ध्वनि ही सुनाई पड़ती है। जब भी अपनी नब्ज़ सुनती हूं तो लगता है कि इसका स्पन्दन भी 'ॐ' ही बोल रहा है इसलिए उसे पुनः–पुनः सुनना मानो मेरा काम ही बन गया है। अब तो यह हाल हो गया है कि मन होता है कि जाते हुए पथिक को आवाज़ दे कर यह सन्देश सुना दूं कि हमारे 'बाबू जी महाराज' आज पृथ्वी पर सहज मार्ग ले आये हैं मानव–मात्र के हित के लिए जिससे साक्षात्कार पाना सहज हो गया है। ओ मेरे बाबू जी! मुझे तो ऐसा लगने लगा है कि मानों मुझे तो एक दैविक एवं अविचल राज्य मिल गया है। अब तो यह हाल हो गया है कि ध्यान में अंतर में ठहर नहीं पाती हूं। जानते हैं क्यों? क्योंकि अंदर आप विराज गये हैं फिर ध्यान किसका करूँ और बाहर इसलिए नहीं आ सकती हूं कि अंतर में विराजे हुए, आपको छोड़कर बाहर आने का मन नहीं होता है। लोगों की मानों कुछ परवाह ही नहीं रह गई है–चाहे कोई कहे कि मैं बड़ी योगिन बन गई हूं क्योंकि आँखें पुनःपुनः तुम्हारे ही ध्यान में डूब जाती हैं, ये खुली हैं या बन्द यह होश ही नहीं है। अब तो योग और भोग दोनों के कोई अर्थ ही नहीं लगते हैं। मुझे तो बस भक्ति ही चाहिए। अब मैं समझी हूं कि अवस्था की प्राप्ति पर ही भक्ति में डूब जाने की चाह उभर आती है और अन्तर स्वतः ही इसका याचक बन जाता है। अंततः यह हाल हो गया है कि लगता है कि मन भक्ति की भीख को पा ही गया है और नाच उठा है। परमानन्द की इस थिरकन में एक ही गीत सुनाई पड़ता है कि मैं इतना ही जानती हूं कि ओ बाबू जी महाराज! आप तो पूर्ण ब्रह्म है और मेरे (संध्या के) शीश पर मानों मुकुट के समान शोभायमान हो गए हैं।

गीत संख्या–3

मरण त्यौहार

(दिसम्बर– 1957)

आज मरन–त्यैहार सखी!
ज्ञान के गोबर आंगन लीपो, आसन कुशा डसी।।
त्याग–विराग–धूप सुलगाई, कलशी लगन भरी।
मुदिता–करुणा–मैत्रि–उपेक्षा–पुहुप गुलाल गरी।।
'राम'नाम तुलसी गंगा जल, प्राणाहुति कफ़नी।

चारि वेद पंडित बनि आये, साबर मंत्र गुनी।।
ध्यान–टिकटिया, सुरत कलावा, अरथी अजब सजी।
पुरुसारथ* के कंधा देतहि,अजपा ढोल बजी।।
चुना सहज पथ शव–यात्रा हित, त्यागि सकल डगरी।
'राम नाम है सत्य' यही ध्वनि, गूंज रही नगरी।।
उदासीनता–ज्वाल जगमगी, अर्पन चिता जली।
ता पर चढ़ 'संध्या' सत् ढूढंन, सद्गुरु साथ चली।।

* पुरुसारथ – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

व्याख्याः –

ओ बाबूजी! आपकी संध्या कहती है कि आप पूर्ण ब्रह्म के ज्ञान के स्रोत हैं–कदाचित् इसीलिए आज आपने यह परम–दशा मुझे प्रदान की है कि आज मैं अपने मरण का त्यौहार स्वयं ही मनाऊं। इस ज्ञान या दशा की, 'संसार की कस्तूरी आज मर गई है' से तो हृदय रूपी आंगन विशुद्ध हो गया है। और अन्तर ध्यान के आसन का रूप ले चुका है जिस पर भक्ति रूपी कुशा फैली हुई है। यह ऐसी लगती है मानो अंतर में त्याग एवं बैराग्य रूपी धूप की सुगन्ध फैली हुई है। 'मालिक' से लगी जी की लगन रूपी कलश अब भर गया है। इतना ही नहीं बल्कि आन्तरिक आनन्द एवं वियोग की करुण पुकार से भी मेरी मित्रता टूट गयी है। पुष्प, गुलाल, नारियल, तुलसी दल, और गंगा जल सभी की ओर से मन में उपेक्षा का भाव आ गया है। अंत समय में कोई मुझे 'राम' नाम सुनाये इसकी भी ज़रूरत नहीं रह गई है। कारण यही है कि जब निरन्तर ईश्वरीय धारा से समस्त तन–मन रूपी कफ़न भींग गया है तो अब ज़रुरत रहे तो किस बात की। अब चारों वेदों के उच्चारण की आवश्यकता इसलिए नहीं रही कि यह तो 'नेति–नेति' कहते हैं और सहज मार्ग पद्धति की साधना तो 'नेति–नेति' से परे अर्थात् ईश्वरीय धारा की प्राप्ति से ही प्रारंभ होती है। मेरे 'मालिक' ने ध्यान द्वारा मेरे लिए 'स्थित–प्रज्ञ' की परम–दशा की टिकटी (अर्थी) पर मानों हमेशा के लिए लिटा कर सुरत रूपी कलावे से इस अलौकिक अनुभूति रूपी अर्थी को सजाया है। अहेतुकी–कृपा रूपी, पुरुषार्थ रूपी कंधों का सहारा पा कर मानों अजपा रूपी हालत की प्राप्ति का ढिंढ़ोरा भी उन्होंने ही पिटवा दिया है और अर्थी को ले जाने के लिए सरल एवं सहज पथ को ही चुना है। 'राम' जो समस्त में रमा हुआ है उसकी प्राप्ति के लिए ध्यान को घट–घट वासी राम में रमा कर ही पाया जा सकता है इसका ढिंढ़ोरा पिटवा कर मानों समस्त के लिए यह सन्देश दे दिया है, परन्तु शव यात्रा में भी अर्न्तदशा बदल गई है, अर्थात् उदासीनता की मंगल– दशा मानों मेरा रूप बन गई है। चिता प्रज्वलित होने तक आत्म–निवेदन अर्थात् सम्मिशन की दशा मानों उनमें ही विलीन हो गयी थी। अब तो 'संध्या' सत् अर्थात् ईश्वर से मिलाने की बारीकियों को जानने वाले सद्गुरु श्री बाबू जी महाराज के पावन सामीप्य की दशा में लयलीन हो चुकी है इसलिए मरण के त्यौहार को मनाने के बाद उनके साथ इससे उन्नत–दशा में क़दम रख चुकी है।

गीत संख्या–4

अपनी झलक
(मार्च 1956)

अंतर पट झीना रे भाई।
बाहर–भीतर सब कुछ झलकत, त्रिभुवन दीठि समाई।
घूंघट भीतर समुझि न आवत, आपन मुख दरसाई।।
सुमिरन अंग–राग बनि बैठो, सुरति की नाव डुबाई।
बिन रेखन को चित्र अनूपम, कहि न परत समुझाई।।
बिन पात्रन के खेल रच्यो है, बिरलो ताहि बुझाई।
'संध्या' बावरि प्रभु मग–जोहत, राम–राम गुन गाई।।

व्याख्या:–

संध्या कहती है कि अब आगे की दशा का क्या वर्णन करूँ । ऐसा लगता है कि अन्तर और ब्रह्म दोनों में एक ही दशा झलक उठी है। फलस्वरूप ध्यान के लिए अब, आँखें बन्द करके अन्तर में देखने की ज़रूरत नहीं रह गई है। ध्यान की दृष्टि में बस एक यही दशा त्रिभुवन में फैली प्रतीत होती है। सांसारिक आवरण रूपी घूंघट भी मानो हट चुका है इसलिए अब समझ में नहीं आ रहा है कि अपना पावन मुख कहूँ या अपने बाबू जी का कहूँ, स्पष्ट दिखाई देने लगा है। सतत् स्मरण मानों मेरा स्वरूप ही बन बैठा है इसलिए अब तक साथ देने वाली सुरत रूपी नाव भी इस महत् दशा में लय हो गई है। अब ब्रह्म में दशा या 'उनकी' याद ही मानों मेरा स्वरूप बन गई है। मैंने इसे लिखने का प्रयत्न तो किया है किन्तु और भी स्पष्ट रूप से इसे कैसे लिखूं, यह समझ में नहीं आता है। अब तो लगता है कि दुनिया से नाता टूट चुका है परन्तु किससे जुड़ गया है यह बताना मेरे लिए असम्भव हो गया है। आज तो अपने 'राम' का गुणानुवाद गाती हुई 'संध्या' उनके मिलन की बाट देख रही है।

गीत संख्या–5

जोगिन चली पिया के देश
(सितम्बर– 1958)

जोगिन चली पिया के देश।
रंग जु बह गया राग करत ही, प्रीति जु बदलो वेष।।
असुंअन–जल अनुराग सींच के, प्रेम बेल दई बोय।
विरह–ज्वाल जागी अन्तर में, झुलसे सकल कलेस।।

कागद कोरो बाँचत-बाँचत, नैना दीन्हें रोय।
सब जग पीर-नीर नहि डूबो, रहि न गयो कछु शेष।।
अचल रंग सों माँग संवारी, बिन्दु सुहागिन देय।
प्रिय छवि नयन दृष्टि देखन हित, अविनासी योगेश।।
मोतिन-माला कण्ठ विराजत, कंगन सुमिरनी पोय।
अलख जगावत 'संध्या' डोलत, प्रियतम को सन्देश।।

व्याख्या:-

संध्या कहती है कि अब तो यह दशा हो गयी है, प्रियतम के प्रेम का रंग कुछ ऐसा छा गया है कि जिसने अन्तर को बेरंग कर दिया है। लगता है प्रेम ने अपनी करवट बदलने के साथ ही मेरे रूप को भी बदल कर रख दिया है क्योंकि अब स्वयं की जगह 'उनका' ही पावन स्वरूप समाया लगता है। उपरोक्त दशा को श्री बाबू जी को लिखने पर उन्होंने भी मुझे पत्र में लिखा था कि प्रेम ने पहले तो मानव-लक्ष्य ईश्वर की सामीप्यता की दशा को प्रदान किया, अब 'उनमें' लय अवस्था प्रदान करके सारूप्यता की महत्-दशा को मेरे में उतार दिया है। प्रथम तो प्रेम की बेल को अन्तर ने स्वयं पिघलते हुए (अश्रुओं से) सींचा, बढ़ाया, पुनः लय-अवस्था की प्राप्ति पर विरहावस्था ने सारे संस्कार रूपी क्लेशों को दग्ध कर दिया। अब अन्तर रूपी कागज़ में कोई शब्द लिखे ही नहीं रह गये हैं बस 'उनका' पावन प्यार मेरे हृदय में समाया हुआ है। जब संस्कारों का स्थान न रहा तो सारे जग का होश व अपनी पीड़ा आदि की अनुभूति ही नहीं रह गई है। लगता है हृदय में एक अविचल स्थिति समा गई है और स्वयं से शून्य हो जाने की अनुभूति मानों बोल उठी है कि मैं ही चिर-सौभाग्य में शून्य रूपी बिंदिया के रूप में चमक रही हूं। 'उनकी' कृपा तो देखिये की सौभाग्य की परम-दशा को निहार पाने के लिये, प्रिय एवं दिव्य-योगेश की दैविक-छवि को निहार पाने के लिए 'उन्होनें' ही मुझे अन्तर्दृष्टि भी प्रदान की है। मोतियों की माला मेरे कण्ठ में विराजमान है अर्थात मेरे कण-कण में 'उनकी' ही दिव्य-छवि समा गई है और कंगन रूपी माला के रूप में मैं 'उनमें' ही लय हुई कहीं 'उनका' ही दिव्य रूप भी पा रही हूं। अब इस प्रिय-दशा का वर्णन (समस्त के लिए) करने के लिये मानों 'उनका' ही सन्देश आज मुझे मजबूर कर रहा है।।

गीत संख्या-6

वैराग्य

(दिसम्बर- 1958)

जोगी! मुक्ता-मनि तू छोड़ रे।
मार्ग चलत अनगिनत लुभावत, सबसों ही मुख मोड़ रे।।

शाह की शाही चार दिनन की, पण्डित पूरन कौन रे।
ले हरदी की गाँठ पंसारी बनि न बैठ, चलु मौन रे।।
थोरेहि जल उबरात तलैया, आतप सोखत नीर रे।
सब सरितन्ह समेटि निसि–बासर, सागर रहत गंभीर रे।।
पियत पपिहरा स्वाँती बूंदन, रटत रहत पीव–पीव रे।
'संध्या' बनी अतृप्त वियोगिनि, प्रभु मग हेरत हीय रे।।

व्याख्या:–

संध्या कहती है, कि अब मेरा योग मालिक से हो गया है अतः समस्त भौतिक वस्तुयें मेरे लिए आकर्षण रहित हो गई हैं। आज मुझे यह दशा प्राप्त हो गई है कि ईश्वरीय–मार्ग पर चलने में लुभाने वाली समस्त चीजों की ओर से अपना मुख फिर गया है। अब मुझे पता चल गया है बादशाह की बादशाहत तो मात्र थोड़े से ही दिनों की होती है एवं विद्वता में भी पूर्ण ज्ञानी कोई बिरला ही होता है या पूर्ण ज्ञानी कोई हो ही नहीं सकता है। श्री बाबू जी के कथनानुसार मानव अथवा विद्वान का यह हाल है कि 'जिसको मिल गई गाँठ हल्दी की, वह समझा कि हूं मैं पंसारी'। अब मैं देखती हूं कि मानव का अभिमान उस तालाब की भाँति हो गया है कि जो थोड़ा सा जल भरते ही उबराने लगता है और जरा सा ताप पाते ही इसका पानी तुरन्त सूख जाता है किन्तु दूसरी ओर समस्त नदियों का जल सागर में ही गिरता है परन्तु वह (सागर) शान्त ही बना रहता है। बस यही दशा योगी की हो जाती है क्योंकि उसका योग ईश्वरीय–अनन्त सागर से हो जाता है। मेरा तो यही कहना है कि जिस तरह से पपीहा पक्षी प्यासा रह कर केवल स्वांति–नक्षत्र के पानी के लिए ही रट लगाये रखता है उसी प्रकार साक्षात्कार पाये बिना अभ्यासी को "और लाओ, और लाओ" की रट ही लगाये रखना चाहिए एवं साक्षात्कार पाने की लगन में सहज–मार्ग पर आँखें बिछाए बैठे रहना चाहिए।

गीत संख्या–7

अनुपम–दर्शन

(मार्च–1959)

सखी री, मेरे प्रभु को रूप निहार।
रूप अनूपम हैं मेरे सद्‌गुरु, त्रिभुवन नहिं अनुहार।।
राम न जानूं, कृष्ण न जानूं, उपमा कोउ न उहार।
खोलुं नैन तऊ ताहि निहारूँ, ध्याऊं हृदय मझार।।
तन है अध्यातम, मन है महातम, सृष्टि रूप विस्तार।
दुर्लभ पद करतल–गत जाके, सोई आतम–आधार।।

जेहि महिमा कोउ गाय न सकिया, वेद न पावत पार।
ताहि अनूठी छवि पर 'संध्या', निसि-बासर बलिहार।।

व्याख्याः-

संध्या कहती है कि आज मैंने अपने सद्गुरु के अनुपम रूप के दर्शन पा लिए हैं। इसका वर्णन कर पाने के लिए मेरे पास न तो शब्द हैं और न सामर्थ्य है, न त्रिभुवन में इसकी समता देने के लिए कोई उपमा ही है। आज मुझे ऐसा लग रहा है कि इनके पावन और अलौकिक दर्शन के अनन्त आनन्द में लय-अवस्था प्राप्त कर, मैं 'राम व कृष्ण' को भी विस्मृत कर बैठी हूं। ऐसी दशा है कि आँखें खोलने पर एवं ध्यान में डूबने पर भी हृदय उनके ही दर्शन में डूब गया है, खो गया है। 'उनका' दर्शन पा कर उलट ही गया है-लगता है मेरा पूरा तन आध्यात्मिकता का ही रूप हो गया है और मन का फैलाव (एक्सपैन्शन) ऐसा हो गया है मानों सारी सृष्टि इसमें ही समाई हुई है। आज 'मालिक' में लय-अवस्था प्राप्त होने से मुझे ऐसा लगने लगा है कि जो पद आध्यात्मिक-दशा के रूप में 'मालिक' ने मुझे बख्शा दिया है वह अभ्यासी के लिए अपने आप पाना दुर्लभ है। जिसकी महिमा का गान कोई कर ही नहीं सकता है और वेद भी जिस विराट-आनन्द का पार न पा कर 'नेति-नेति' कह कर चुप हो जाते हैं, उस उनूठी छवि का दर्शन पा कर संध्या रात-दिन बलिहार हो कर रह गई है।

गीत संख्या-8

पंछी

(जून-1960)

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै।
कितेक सुखन की घनी घनेरी, अधिक-अधिक नियरैहै।।
जनम-जनम दुखिया के दुख,देखत ही घट जैहै।
पूंजी बांधि धरी अन्तर की, कण-कण में बिखरैहै।।
जियन-मरन अरु जाति-कुजाती, भेद सकल बिलगैहै।
अपनी अरु परतीत पराई, प्रीति ठौर इक ठइहै।।
जागत-सोवत शरण तुम्हारी, उर अन्तर सरसैहै।
सुरति-कलेवर बाँधि चलो री, विष अमृत बनि जैहै।।
स्वप्न-सुषुप्ति, तुरीय रहनी बिच, प्रज्ञा थिर न हिरैहै।
दुर्लभ गति-मति अनुपम सद्गुरु, सोऊ सदा दरसैहै।।
मन बिन मस्त फकीरी गति में, रति न तऊ घिरि पैहै।
'संध्या' सन्ध्या- भोर जहाँ नहिं, शून्य दीप बुझि जैहै।।

व्याख्या:–

संध्या कहती है कि अब उस दशा के बारे में लिखने जा रही हूं कि जब मन रूपी पंछी हमें छोड़ कर 'मालिक' में ही लय हो जाता है। बस उस दिन से कितनी ही परमानन्दमय दशायें हमारे अन्तर में प्रवेश करती हैं और हमारी उन्नति–गति तीव्र हो जाने के कारण ये (दशायें) जल्दी–जल्दी बदलती जाती हैं। परमानन्द की अनुभूति के कारण लगता है कि जन्म–जन्म से दुखी अंतरमन का दुःख दूर हो गया है क्योंकि जब मन रूपी पक्षी ही उड़ गया तो फिर जन्म–जन्म से संचित संस्कार रूपी पूंजी मानों स्वयं से दूर हो कर बाहर कण–कण में बिखर गई है, तबसे ही जीवन और मरण, जाँति–पाँत, छोटा–बड़ा सारे भेद समाप्त हो गये हैं। इतना ही नहीं अपने–पराये की अनुभूति समाप्त हो कर मानों समस्त के प्रति हृदय में एक ही भाव (प्रीति का) रह गया है। अन्तर स्वयं ही प्रियतम ईश्वर की शरणागत की दशा में डूबा रहने लगता है, इस स्थिति के लिए उसे प्रयास नहीं करना पड़ता है। अन्तर की लगन कुछ इस प्रकार से इतनी सुदृढ़ प्रतीत होने लगती है कि यदि विष है तो वह भी मेरे लिए अमृत के समान आनन्ददायी बन जाता है। (मालिक) में लय होते ही लगता है कि सुषुप्ति–अवस्था इस प्रकार छा गई है कि यह संसार मुझे स्वप्न की भाँति भासने लगता है और तुरीयावस्था अर्थात् निगेशन मेरा स्वरूप बन गया है, ऐसा लगने लगता है। अब स्थिति–प्रज्ञ अवस्था ही मेरा रूप बन गयी है। बस इसका कारण मुझे यही लगता है कि अभ्यासी के लिए यह दुर्लभ गति और अनुभूति सद्गुरु श्री बाबू जी महाराज के अतिरिक्त कोई और प्रदान करने वाला नहीं है। आज बाहर–भीतर, कण–कण में उनके दिव्य विराट् दर्शन के अतिरिक्त मुझे कोई अनुभूति ही नहीं है। मन के लय हो जाने पर जो मस्ती अन्तर में उभरती जाती है तो यही प्रतीत होता है मानों मैं नहीं बल्कि मेरे स्थान पर कोई मस्त फकीर जा रहा है। बस एक अलौकिक बात यह थी मानों स्वयं अपने अस्तित्व से वैराग्य हो गया हो, पहचान समाप्त हो गई हो। संध्या कहती है कि तबसे ही मानों मेरे लिए कब साँझ होती है और कब सवेरा होता है यह प्रतीति ही जाती रही। मेरे द्वारा सारे कार्य सुचारु रुप से हों–यह ज़िम्मेदारी भी मेरे श्री बाबू जी ने संभाल ली थी। आध्यात्मिक सहज–मार्ग में हम एक क़दम बढ़ कर देखें तो, कि वे धरती पर हमारे लिए कौन सी आध्यात्मिक अनमोल गतियां ले कर उतरे हैं। जब अपने होने की प्रतीति शून्य हो जाती है तब श्री बाबू जी के कथनानुसार लय–अवस्था में लय हो जाने पर अभ्यासी निगेशन की (तुरीयावस्था) परम गति प्राप्त कर लेता है।

नैंन फोरि कहं जाना

(दिसम्बर– 1960)

साधो! नैन फोरि कँह जाना।।
डगर–डगर चल, नगर–नगर फिरि, पायो कहुं न ठिकाना।
ऐसी ठौर चलि बैठि रहो ना, जंह नहिं आना–जाना।।
सूर्य न उपजत, चंद न उमगत, पृथ्वी न नभ की उड़ाना।
हाथ न पाँव, न भूख न प्यासी, अन्तर पीर पिराना।।
ब्रह्म घूम्यो हिरण्य घूम्यो, पिंडऊ गयो हिराना ।
मैं जानी सिर मौर तिहारे, चले न कोऊ बहाना।।
थकी न चालत जनम–जनम से, खोजत ठौर ठिकाना।
नाच–नाच आज 'संध्या' गावत, भेज्यो राम परवाना।।

व्याख्या:–

संध्या कहती है कि अब तो मेरे दुनियाबी नेत्रों का प्रकाश तो 'मालिक' के दर्शन पर न्योछावर हो गया है। कितने साधुओं द्वारा बताये आध्यात्मिक–मार्गों पर चल कर जो सहज–मार्ग मुझे नहीं मिल पाया था, वह अब मिल गया है। अब ध्यान मग्न हो कर इस ठौर (स्थान) को पा कर मैं बैठ गयी हूं, अब मुझे कहीं जाने–आने की आवश्यकता नहीं रह गई है। अब मन के लय हो जाने पर 'उनके' बनाये संसार से परे मुझे बैठने का स्थान मिल गया है। अब उन्हें ही मेरी उन्नति की फ़िक्र लग गई है। अब आगे देख कि यहाँ न तो सूर्य की तपिश है और न रात्रि के चन्द्रमा की भाँति शीतलता ही है। न पृथ्वी का स्पर्श है और न आसमान में उड़ने का मन ही है। अब तो भूख–प्यास और स्पर्श आदि की कोई प्रतीति ही नहीं होती है, बस लगता है कि बिना स्पर्श के ही सारे कार्य स्वतः ही सम्पन्न होते रहते हैं। बस अब तो अन्तर में कहीं ईश्वर–मिलन की प्राप्ति की पीर ही मुझे कभी जगा देती है, मानों शरीर को चेतना देती रहती है कि यह ज़िन्दा है। मेरे 'मालिक' बाबू जी की कृपा तो देखो कि उन्होंने ब्रह्मांड–मण्डल की यात्रा भी कराई तथा शक्ति पर मिल्कियत भी दी। पिंड–देश तो मानों जीवित रहते हुए भी मेरे लिए मर गया है परन्तु एक बात अवश्य कहूंगी कि लय–अवस्था प्राप्त हो जाने के कारण आपकी कृपा के पास मुझे आगे उन्नति–पथ पर ले चलने का बहाना भी समाप्त हो गया है। जो 'तुम्हारे' अन्तर में समा कर दम तोड़ चुकी है उसको आगे ले चलने के लिए आप भी मजबूर ही हो गये होंगे। जन्म–जन्मान्तरों से अपने बाबू को खोजती हुई संध्या को अब आप मिल गए हैं। आपकी खोज में मुझे थकान कभी आई ही नहीं। आज आपका नेह–निमन्त्रण पा कर आपकी संध्या का अन्तर आपका गुणानुवाद

करते हुए नाच उठा है कि आज मेरे राम ने मुझे स्मरण किया है, इसलिए भाइयों! जागो और पकड़ लो इन पावन चरणों को।

गीत संख्या–10

मोरे राम–राम दोऊ अंखियाँ

(अप्रैल–1965)

मोरे राम–राम दोऊ अंखियाँ।
सुन्दर सहज–मार्ग–सागर मंह, सद्‌गुरु नाम खेवटिया।।
कोऊ कहे पूरन–ब्रह्म परमेश्वर, नैनन नहीं देखियाँ।
मैं जो निकसी पीव मिलन को, ओढ़ लई रखियाँ।।
सुरत–सुहागिन, आस–निवासिन, नवल ज्योति लखियाँ।
शील–सन्तोष सिमट चिपटाने, उतिन लई बखियाँ।।
बीथिन–बीथिन खेलन दौरी, धीर कहाँ धरियाँ।
छिन–छिन आय बहत जल धारा, हैं कपोल झखियाँ।।
बूंद–बूंद मधुमास संजोयो, बावरि मधुमखियाँ।
'संध्या' राम–चरन रति मानी,बूड़ गई पंखियाँ।।

व्याख्या:–

संध्या कहती है कि मुझे कुछ ऐसा लगने लगा है कि मेरी दोनों आँखें, आँखें नहीं हैं बल्कि मेरे राम 'श्री बाबू जी' ही मेरी आँखें हो गये हैं। क्योंकि इनके आगे हर समय मानो वे ही दिखाई पड़ते हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि सहज–मार्ग द्वारा भव–सागर पार कराने के लिए मेरे सद्‌गुरु श्री बाबू जी महाराज का नाम ही केवट बन कर आया है क्योंकि उनके ही सतत्–स्मरण ने भव–सागर पार करवा कर आज मुझे यह पावन एवं आन्तरिक दृढ़ स्थित–प्रज्ञ की दशा प्रदान की है। अब तक यह सुनती आई थी कि पूर्ण–ब्रह्म परमेश्वर के दर्शन नहीं पाये जा सकते हैं लेकिन मैंने देख लिया है कि सद्‌गुरु की दिव्य–शक्ति का आंतरिक सहारा पा कर सारे अन्तर का मल (रखियाँ–राख) जल कर राख हो गया है और इसके स्थान पर 'उनकी' याद सतत् बन गई है। मेरी अन्तर दृष्टि में मानों दिव्य–ज्योति समा गई है ताकि मैं उनका दर्शन और आविर्भाव अंतर में पा सकूं। दैविक–गुण जैसे शील–सन्तोष आदि हर हालत में स्वतः ही मेरे अन्तर में उमंड़ आये हैं जिन्होंने संस्कार रूपी गुदड़ी की बखिया को उधेड़ कर फेंक दिया है। अब तो यह हालत है कि लगता है जगह–जगह यह सन्देश फैला जाऊं कि कोई हमें लेने आ गया है अनन्त–यात्रा के लिए। समस्त के प्यार में बार–बार आँखों से अश्रुधारा बह निकलती है जो गालों पर बह आती है। जैसे शहद पाने की आशा में मधु–मक्खियाँ बूंद–बूंद करके फूलों

के रस को महीनों एकत्रित करती रहती हैं उसी प्रकार 'संध्या' की आँखों ने 'मालिक' के ध्यान में डूब कर प्रेम के अश्रुओं की एक-एक बूंद एकत्रित कर ली है। अब मानों दृष्टि स्वयं उसमें ही लय हो गई है।

गीत संख्या-11

समर्थ सद्गुरु श्री लाला जी साहब के उदार चरणारविन्दों में

(नवम्बर-1966)

ओ पितृ-महे तव कीर्ति-कला नूतन उजियारी।
रवि किरणों संग थिरके अवनि-अम्बर में सारी।।
तव पावन कंचन-सुयश पवन-धरती से लेकर।
बरसे सत् सहज-मार्ग द्वारा, प्राणाहुति बन कर।।
आया कलयुग है घोर, कहा करते थे सबसे।
होगा क्या? किन्तु विचार न पाते थे विनिमय से।।
जन पछताते थे, अवतारिक-युग के स्मरण से।
हम हाय गये थे, कहाँ रहे, भ्रम-भूलि भंवर से।।
है वही दृष्टि जो दिव्य हुई तब दिव्यागम से।
जन-जन में है सौजन्य-भाव भ्राता-भगिनी से।।
सुन्दर रतनारे नेत्र ध्यानमय शून्य हुए से।
ओ ब्रह्म लोक रत्नाकर के तुम महारतन से।।
नित रहे कमल-कर वरद् सदा ही जगत-पिता से।
हे महीपते! महिमा अपार तव धवल-शरद से।।
ओ पूर्ण कला के कलाकार तव अमर कृति को।
बरनै शारद किमि युग-परिवर्धक पूर्ण-व्रती को।।
है हुआ पूर्ण अस्तित्व दिव्य कण-कण में जिनके।
वे परम-विन्दु के चरम-मीमान्सक वरद् वरों से ।।
जो प्रेम-त्याग की मूर्ति समाहित सम समता से।
जीवन की यह लौकिक-झांकी, बाँकी जप तप से।।
था मूल-ब्रह्म पर तकिया, गति उन्नत थी उससे।
उन्नत ललाट पर सहज-सन्देशा मंथर-गति से।।
व्यवहार यथोचित करो किन्तु समझो सब अपने।

कर्त्तव्य सुदृढ़, गति मौन, सदा ही रत ईश्वर से।।
हे योगेश्वर योगेश, दृष्टि जाती थी जिस पर।
पाता था सहज-स्वरूप, मुग्ध सुध-बुध सब खो कर।।
सुनि कीर्ति कला नूतन निर्मित आतम के गति की।
चल पड़ी बाल यह द्वार तिहारे सहज-मती की।।
न्योछावर तात-गात प्राणों की मंथर गति से।
स्वीकार करो है आज लगी बाजी निज प्रभु से।।

व्याख्या:-

संध्या कहती है कि ओ मेरे दादा गुरु समर्थ सद्‌गुरु श्री लाला जी साहब! अपका सुयश और कृति (श्री बाबू जी) जिसको आपने अपने दैविक-प्रसाद से आज इस धरा पर उतारा है आध्यात्मिक-उन्नति के हित नित नये रूप में उजागर हो कर हमारे समक्ष आ रही है इतना ही नहीं सूर्य की किरणों के समान इनका प्रकाश पृथ्वी से लेकर आकाश तक छा रहा है। पवित्र कंचन (स्वर्ण) के समान आपके इस धवल यश को मानों पवन श्री बाबू जी की प्राणाहुति-शक्ति के रूप में समस्त धरा में फैला रहा है।

हे महात्मन्! अब तक हम सब जब एकत्रित होते थे यही कहा करते थे कि भाई, घोर कलियुग आ गया है। अब क्या होगा-हमें कौन राह दिखायेगा, किन्तु कोई भी मार्ग सामने नहीं था। हमें पछतावा रहता था कि यहाँ अवतारों का भी अवतरण हुआ किन्तु हाय,तब भी हम कहाँ भटकते रह गये जो उनके समय में भी उनको न पा सके। लेकिन आज धरा पर आपका पावन एवं दिव्य आविर्भाव होने से सारी सृष्टि के मन से मानों सारा मल धुल गया है और यह दैविक-ज्योति से जगमगा उठी है। इतना ही नहीं आज हमारे अंतर में भाई-चारे का भाव एवं अपनापन सजग हो उठा है।

हे परमात्मन्! आपके नेत्र-हृदय में रत्न के समान एक चमक है लेकिन यह दैविक ही है क्योंकि नेत्र तो सदैव ध्यान में डूबे हुए एवं शून्य हुए से प्रतीत होते हैं। हमें तो ऐसा लगता है कि दिव्य ब्रह्म-लोक रूपी सागर ने हम मानवों के लिये सबसे मूल्यवान रत्न आपके रूप में हमें प्रदान कर दिया है। ओ जग के मालिक! आपके वरद हस्त-कमलों का साया हमें सदा ही मिलता रहे यही प्रार्थना है। आज आपकी महिमा का उज्जवल प्रकाश शरद-ऋतु की उज्जवल चाँदनी के समान समस्त धरा पर फैल रहा है।

ओ हमारे परम प्रिय दादा जी! आप तो दैविक कला के पूर्ण कलाकार हैं क्योंकि आपकी सजाई एवं संवारी हुई श्री बाबू जी महाराज रूपी दिव्य एवं अमर कलाकृति की महिमा का बखान तो स्वयं भगवती सरस्वती भी कर पाने में असमर्थ हैं क्योंकि श्री बाबू जी का दैविक-संकल्प तो युग-परिवर्तन अर्थात् सतयुग को लाने का है और यह अपनी दैविक एवं अमोघ इच्छा-शक्ति एवं प्राणाहुति-शक्ति का पावन प्रवाह देकर सफल हो कर ही रहेगें। यह विश्वास हमें इसलिए

भी है कि आज उनकी ही कृपा शक्ति से हमें यह आभास मिलने लगा है कि यह पूर्ण अस्तित्व ही नहीं बल्कि इनका कण-कण मानों पूर्ण दैविक-अस्तित्व भूमा का ही प्रतिरूप है। कदाचित् इसी कारण आज यह उस परम विन्दु अर्थात् भूमा के केन्द्र के सम्पूर्ण ज्ञान को जानने वाले और इसी दिव्य-शक्ति का वर देने वालों में आज ये सर्वश्रेष्ठ हैं।

ओ मेरे दादा जी! आप प्रेम और त्याग का सजीव समस्त स्वरूप ही हैं और समस्त के लिए एक ही सा भाव होने से मानों आप समस्त में समाये हुए हैं। आपके भौतिक जीवन के अद्भुत रूप की दैविक-छवि, जप-तप सबसे ही परे अलौकिक है। इतना ही नहीं आपकी ही कृपा से हमें ऐसा प्रतीत होता है कि मानों मूल-ब्रह्म अर्थात् ब्रह्म के मुख्य केन्द्र की परम शक्ति एवं विराट स्वरूप पर आपका स्वामित्व है, परन्तु आपकी शक्ति की रवानगी इससे भी ऊंची है। आपका उन्नत एवं उज्जवल ललाट (माथा) मानों हमें कोई दैविक-संदेश देता रहता है।

हे जग के स्वामी! हमें तो आपका यही संदेश मिलता रहता है कि समस्त के प्रति अपना प्यार रखते हुए, सबके प्रति अपने कर्तव्य एवं व्यवहार को यथा योग्य निभायें। अन्तर को ध्यान में मग्न रख कर ईश्वरीय प्रेम में भिगोये रक्खें। योग को जानने वालों में भी श्रेष्ठ योगेश्वर! हमें श्री बाबू जी ने ही यह बताया है कि आपकी शून्य लगने वाली दृष्टि जिन पर और जिस ओर भी उठ जाती थी वह मानों सारे आवरणों का भेदन कर के अपने सहज स्वरूप को प्राप्त कर दैविक मुग्धावस्था को प्राप्त कर लेता था अतः स्वतः उसका अन्तर ईश्वरीय-प्रेम में सुध-बुध खोकर मुग्ध हुआ रहने लगता था।

हे प्रभु! आपका दिव्य सुयश फैला देखकर आपके बारे में श्री बाबू जी से सुन कर और इनके द्वारा लाये हुए आध्यात्मिक-पथ अर्थात् सहज-मार्ग में प्रवेश पाकर आज यह बालिका कस्तूरी (संध्या) आपकी चौखट पर सिर को नवाने के लिए चल पड़ी है। हे मेरे माता-पिता रूप लाला जी साहब! आज मेरे प्राणों की गति मंथर (धीमी) हो गई है। जानते हैं क्यों? क्योंकि मैंने स्वयं से यह बाजी लगा ली है कि मेरे दादा जी मुझे अपने ममत्व से स्वीकार कर लेंगे और मेरा जीवन धन्य हो जायेगा। तभी मैं उनके द्वारा धरा पर उतरी महत् शक्ति अपने श्री बाबू जी महाराज में पूर्णतया लय हो कर उन्हें प्राप्त कर लूंगी।

गीत संख्या-12

अब सत्य हुआ मेरा सपना

अब सत्य हुआ मेरा सपना।
कोई आयेगा ले जायेगा, हमको अपना कर कह अपना।।
युग लाया हमको धरती पर, सोचा था चलें मुक्ति-पथ पर।
योगी न हुए, राहें भूले, राही फिर वापस लौट गये।

कब आयेगा सद्गुरु अपना ।।

बैशाख बदी पंचमी घरी, सृष्टि का हिया हुलस आया,
प्रकृति का पुरुष था मुस्काया, धरती ने आँचल फैलाया।
बलिहार हुआ तन-मन अपना।।

कबसे जो आस लगी थी, वह जीवन का सहारा मिल ही गया,
मंज़िल ने हमें पुकार लिया, हमें मन का प्यारा मिल ही गया।
मुश्किल ना मंज़िल को पाना।।

इनको ही देखा है जबसे, अब कुछ न दिखाई देता है,
इनको ही पाया है जब से, अब कुछ न पाया जाता है।
अब तो बस लय होते जाना।।

इन मुट्ठी भर हड्डी में है उस परम शक्ति का निझर स्रोत,
इन शून्य हुई आँखों में है, सत् अंतिम की वह अलख ज्योति।
इनकी करुणा में मिल बहना।।

अलमस्त हुआ अन्तर अपना, अव्यक्त तुरीया का भोगी,
फैली समक्ष है महा-प्रलय, कब रोके से रुकते योगी।
मत पूछो है चलना कितना ।।

साक्षात्कार कैसे कह दूं, मारग जो सहज सा पाया है,
ईश्वर-दर्शन कैसे समझूं, मनुआ अन-अन्त समाया है।
सत् अन्तिम लक्ष्य हुआ अपना।।

दैविक शक्ति में सौंदन कर, मानव गुदड़ी का भाग्य जगा,
साक्षात्कार पाने को है, मन का कण-कण हो सजग उठा।
हर रोम-रोम है आँख बना।।

धरती नव-मंगल गायेगी, गण-देव पुष्प बरसायेंगे,
अभ्यासी-वृंद आँचल में भर, 'बाबू जी' चिरायु हो गायेंगे।
'संध्या' झोली सबकी भरना।।
अब सत्य हुआ मेरा सपना।।

व्याख्या:-

संध्या कहती है कि ओ बाबू जी! लगता है कि युग-युग से मेरे अन्तर में एक स्वप्न पल रहा था जो आपको समक्ष में पा कर अब पूर्ण हो गया है। आप क्या मिले मानो समस्त इच्छायें आपमें ही विलीन हो गई हैं। किन्तु यह बात समस्त के लिए उजागर ही होना चाहिए कि युगों से संध्या के अन्तर में कौन सा स्वप्न पल रहा था? इसका उत्तर अब समझ में स्पष्ट हो गया है

कि हम तो शायद किसी अवतार के समय इनके (अवतार के) सान्निध्य का लाभ न उठा सके किन्तु आशा यह लगातार ही अन्तर, में पलती रही कि अब हमें लेने कोई न कोई अवश्य ही आयेगा।

संध्या पुनः कहती है कि युग तो हमें हमेशा ही धरती पर लाता रहा है और हम हमेशा यही सोचकर आते रहे कि अबकी बार अवश्य ही आवागमन के चक्र को त्याग कर मुक्ति की अवस्था प्राप्त करके ही वापस आयेगें किन्तु वह पूरी न हुई और हम फिर-फिर ऐसे ही पुनः संसार में वापस आने के लिए लौटकर चले गये। जानते हैं क्यों? क्योंकि हमें साधना की यह राह न मिल सकी जो प्रिय से हमारा योग कर दे अतः इसी प्रतीक्षा में हमें पुनः वापस लौटना पड़ा कि हमारा प्राण प्यारा सद्‌गुरु कब हमें सत्य-पथ की राह दिखाने आयेगा। इस जीवन में वह पावन घड़ी आ ही गई-वह घड़ी है बैसाख माह की बदी पंचमी जिसमें हमारे श्री बाबू जी को धरा पर उतार लाने के लिए सम्पूर्ण सृष्टि का हृदय उमड़ आया और वह आदि-पुरुष (भूमा) मानों इन्हें (श्री बाबू जी को) समर्थ सद्‌गुरु श्री लाला जी की गोद में देते हये मुस्कुरा उठा था कि 'जाओ तुम्हारी प्रार्थना मंजूर हो गई है।" धरती ने सौभाग्य-आँचल में इन्हें (श्री बाबू जी को) समेट लिया था।

इन पर, दृष्टि पड़ते ही मन को लगा कि आज सदियों से लगी हमारी प्रतीक्षा पूर्ण हुई है और हमें जीवन का सहारा मिल गया है। इन को पाकर लगा कि मानों स्वयं मंजिल ही हमें मिलने के लिए पुकार रही है क्योंकि इनके आगमन मात्र से ही अभाव की अनुभूति समाप्त हो गई है। इतना ही नहीं अन्तर में ऐसा लगने लगा है मानों हमें अपनी आध्यात्मिक-मंज़िल पाने के लिए अब कोई भी कठिनाई नहीं रह गई है।

संध्या कहती है कि जबसे धरा पर इनके दर्शन मिले हैं तबसे न जाने मेरे जी को क्या हो गया है। अन्तर-ज्योति में ये ऐसे समा गए हैं कि अन्दर-बाहर अब अपने श्री बाबू जी के अलावा कुछ भी, कोई भी दृष्टि के आगे ठहरता ही नहीं है। इतना ही नहीं यह क्या मिल गए हैं कि अब मुझे कुछ भी पाना शेष नही रह गया है। अब तो मन इनमें ही डूबा रहे (लय रहे) यही स्वतः प्रयत्न रहने लगा है। देखने में मात्र ढांचा लगने वाले बाबू जी में मुझको लगा कि इनके अन्दर मानों आदि-शक्ति का निर्झर एवं अनवरत श्रोत प्रवाहित है। इतना ही नहीं जब कभी इनकी शून्य सी दृष्टि के ऊपर अपनी निगाह जाती थी तो यही लगता था कि उनमें अन्तिम-सत्य की अलख-ज्योति समाहित है तो फिर हमें बस अब करना क्या था-यही कि इनकी प्राणाहुति-शक्ति द्वारा हमारे अन्तर में जो इनकी करुणा की वर्षा हो रही है, उसमें ही अन्तर को लय रखते हुए इनकी इस अनुपम कृपा में बहते रहें। धीरे-धीरे मैंने पाया कि अपना अन्तर ऐसी अवस्था में रहने लगा कि जैसे एक अलमस्त फ़कीर या योगी जो उनकी कृपा से अब अव्यक्त गति एवं तुरीयावस्था का आनन्द पा रहा है। अब तो आवरण हटते ही ऐसी अनुभूति भी समक्ष में व्याप्त मिलने लगी है मानों अब अपनी महाप्रलय (फ़नाये-फ़ना) को पाना दूर नहीं है अतः अब यह योगी भी पीछे कैसे हटती। कदाचित् इसीलिये वह लेखिनी से कहती रही कि अभी

इस हालत को लिखने का समय नहीं है क्योंकि अभी तो योगी इस अलौकिक–दशा में लय होने जा रही है।

इतना ही नहीं अब मैं यह नहीं कह सकती हूं कि मैंने साक्षात्कार पा लिया है क्योंकि श्री बाबू जी महाराज के सहज–मार्ग में मानव–लक्ष्य भूमा को पाना है। यदि मै यह कहूं कि मुझे ईश्वर का दर्शन मिल गया है तो यह भी कहा नही जा रहा है क्योंकि मै देख रही हूं कि जी तो स्वतः ही अनन्त–दशा में समा गया है और श्री बाबू जी ने इसे अन्तिम–सत्य में लयलीनता का परम लक्ष्य स्वतः प्रदान कर दिया है अर्थात् यह ठान–ठान बैठा है कि हमें अपने लक्ष्य 'भूमा' को ही पाना है। यदि आप आज मुझसे यह पूछें कि साक्षात्कार पाने की तेरी तैयारी क्या है? तो मैं मात्र इतना ही बता सकती हूं कि मेरे मालिक ने मेरे पूर्ण अस्तित्व को दैविक शक्ति में लय करके मेरे भौतिक–रूप को यह सौभाग्य प्रदान कर दिया है कि मेरा जीवन धन्य हो गया है। आप पूछ सकते हैं कि आखिर हम कैसे समझें कि साक्षात्कार पाने का समय आ गया है तो सुनिये–मुझे ऐसी अनुभूति है कि मानों मेरे कण–कण में दिव्य–चेतना भर गई है और शरीर का रोम–रोम मन्नो आँख बन कर उस अनन्त रूप माधुरी का पान कर रहा है।

ओ मालिक! मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानों धरती मंगल–गान कर रही है और देव–गण पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। जानते हैं क्यों? क्योंकि आज इसे धन्य कर देने के लिए ऐसी महान् दैविक–विभूति उतर आई है। आज हम अभ्यासी–गण दैविक पुष्पों की वर्षा को आँचल में समेट कर यही गान कर रहे हैं कि हमारे बाबू जी चिरायु रहें और 'संध्या' तो इसी प्रार्थना में लयलीन है कि मेरे मालिक! यह अनुपम साक्षात्कार की देन समस्त अभ्यासी भाई–बहनों को नसीब हो।

गीत संख्या–13

जिनके हृदय श्री बाबू जी हैं

जिनके हृदय श्री बाबू जी हैं, तिन और का ध्यान किया न किया।
जिन 'रामचन्द्र' को ध्याय लिया, तिन गीता अध्याय किया न किया।।
कोई आतमवाद पुकार रहा, कोई पावन वेद उचार रहा।
जिन प्राणाहुति का आश्रय लिया, तिन तीर्थ–स्नान किया न किया।।
अवतार उतर आयें जग में, इन्सान नहीं बन पाता है।
अन्तर–सत्संग लिया जिसने, तिन व्यर्थ का ज्ञान लिया न लिया।।
मारग है सहज सा दिखलाया, अरु प्राणाहुति को जगाया है।
इन्सान में ईश्वर–तत्व भरा, फिर निज का होश दिया न दिया।।

निकले हैं बहुत आज़ादी से, हम असल तत्व को पाने को।
जब तत्व में तत्व मिलाय दिया, साक्षी बन साथ दिया न दिया।।
श्री लाला जी समरथ गुरु की, हम शरण चरण बलिहारी हैं।
हमें आपन रूप मिलाय दिया, फिर राम का नाम लिया न लिया।।
इन बाबू जी के चरणों को हम, अपने को बिसराय गहैं।
ना होश का होश बचा हममें, अब आतम ज्ञान लिया न लिया।।
हर रोज बसन्ती बयार बहे, हर ओर यही आवाज़ उठे।
जब तक सूरज अरु चन्द्र रहें, 'बाबू जी' हमारे चिरआयु रहें।।
जब तक धरती-आकाश रहें, 'संध्या' के बाबू जी चिरआयु रहें।
चिरआयु रहें, चिरआयु रहें।।

व्याख्याः-

संध्या कहती है कि सहज-मार्ग साधना में अभ्यासियों के ध्यान में स्वतः ही श्री बाबू जी महाराज बस गये हैं, उनको और कुछ भी ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं रह गई है क्योंकि मैंने यही पाया है कि ध्यान में श्री बाबू जी के बस जाने के बाद जितनी भी अन्यथा चीजें ठहरी होती हैं, वे स्वतः ही साफ़ हो जाती हैं। जानते हैं ऐसा मैंने क्यों कहा है? क्योंकि मै पहले स्वयं ही पाठ आदि किया करती थी।

मैंने देखा है कि चाहे आत्म-विषय की चर्चा हो या वेदों का पाठ हो किन्तु जब हमारे अन्तर को श्री बाबू जी महाराज की प्राणाहुति-शक्ति के प्रवाह का स्नान मिल पाता है तो फिर तीर्थों में जा कर पावन गंगा-यमुना की धारा में स्नान का मोह भी समाप्त हो जाता है।

इतना ही नहीं मैंने यही पढ़ा है कि अवतरणों का अवतरण किसी भी दैविक-कार्य की पूर्ति हेतु होता है। हाँ यदि हम समझ पायें कि ये अवतार हैं और उनके ध्यान में चिपट जायें तब तो हमारा उद्धार भी हो जाता है किन्तु जो इन्सान नहीं समझ पाते हैं वे तब भी वंचित रह जाते हैं किन्तु जब हमें प्राणाहुति-शक्ति का सहारा पा कर अपने अन्तर में ही उनकी अनुभूति मिलने लगती है तब हमें और ज्ञान व ध्यान सभी व्यर्थ लगने लगते हैं।

हमारे श्री बाबू जी महाराज ने जबसे हमें पावन एवं दिव्य सहज-मार्ग दिखाया है और अपनी प्राणाहुति-शक्ति द्वारा जब मानव-अन्तर का योग ईश्वरी-शक्ति से कर दिया है तबसे हमें अन्तर में ऐसी अनुभूति स्वतः ही मिलने लगती है कि मानों अन्तर से भौतिक तत्व दूर होते जा रहे हैं और हमारे अन्तर में आत्म-तत्व कुछ इस तरह से भरता जाता है कि हमें लगता है कि हमारे अन्तर में स्वतः को भूल जाने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। श्री बाबू जी के कथनानुसार 'फारगेट फुल-स्टेट' पैदा हो जाती है।

क्रमशः हममें यही अनुभूति रहने लगती है कि मानों अब हम आज़ाद हो गये हैं। इसे ही श्री बाबू जी ने मुक्ति की अवस्था कहा है। कदाचित् सहज ही हमें यही प्रतीत होता है कि वास्तव

में अब हम असल-तत्व ईश्वर से अवश्य ही मिल पायेंगे और जब उनकी कृपा-शक्ति से हमें ऐसा दिव्य-योग मिल जाता है तब हमें सतत् यही महसूस होता है कि इस दैविक-मिलन के मात्र साक्षी वे स्वयं ही हैं। आज ऐसी मनोनीत दशा का योग पा कर मेरा मन ऐसी परम-शक्ति को धरा पर उतार लाने वाले श्री बाबू जी महाराज के समर्थ सद्गुरु जी श्री लाला जी साहब के पावन चरण-द्वय पर बलिहार हो गया है। जिनकी कृपा से मानों उनके ही दिव्य-प्रतिरूप श्री बाबू जी में मैं लय हो गई हूं। अब चाहे राम कहूं, चाहे लाला जी और चाहे बाबू जी कहूं मानों सारे नामों की संज्ञा एक ही हो गई है।

अब तो बस यही जी चाहता है कि कैसे भी अपने इन श्री बाबू जी महाराज के चरण-द्वय में मैं इस तरह से लय हो जाऊं कि फिर लौटकर अपने अस्तित्व की कभी सुधि ही न आवे। उनकी कृपा से सच ही अपने अस्तित्व की सुधि कभी लौटकर मुझमें आयी हो नहीं और तभी लगा कि मानों आत्मा, परमात्मा में मिल चुकी है। इतना ही नहीं मन मानों पुकारने लगा कि मेरे 'मालिक' को धरा पर उतार लाने वाली बसन्ती-बयार (बसंत पंचमी जिस दिन समर्थ सदगुरु लाला जी सहब का दैविक-आगमन धरा पर हुआ था) मानव-मात्र को यह आवाज़ देती रहे, कि "जब तक सूर्य और चन्द्र आकाश में चमकते रहें हमारे बाबू जी की कीर्ति अविचल रहे। इतना ही नहीं जब तक धरती और आकाश रहें तब तक हमारे बाबू जी महाराज अमर रहें।" यही हमारी प्रार्थना है।

गीत संख्या-14

अरे, ये किसने हमें बुलाया

अरे ये किसने हमें बुलाया।
कैसे सरस-मधुर मृदु-रस से, किसने हमें जगाया।।
ज्यों ज्यों हम जागे अन्तर में, खिला हृदय ज्यों कमल-सरोवर।
किसने जल बरसाया।।
उठे सहज-पथ देखा उज्जवल, चकित नयन लागे मृदु मुख पर।
किसने गीत सुनाया।।
सोये थे युग-युग से अब तक, खोज न पाये निज गृह का पथ।
किसने हाथ बढ़ाया।।
कैसी थी वो मधुर मूर्ति प्रिय, पिघल रहा अन्तर मन जिन पर।
किसने रस बरसाया।।
पल-छिन चैन न आये उन बिन, तड़पें ज्यों मछली पानी बिनु।

किसने दरद उठाया।।

रैन न भोर, नींद नहि, जागूं, श्वांस स्वयं की से उठ भागूं।

किसने शब्द सुनाया।।

जा दिन हृदय बसे बाबू जी, पलक–कपाट दिये नयनन सू।

किसने जिय भरमाया।।

मिशन 'राम' का कला चन्द्र सम, बढ़ें–खिलें दिन–दिन मानव–मन।

किसने भाग्य जगाया।।

'संध्या' अमृत प्राणों में भर, पिला रहा जो निश–दिन निर्झर।

किसने उर अपनाया।।

अरे ये किसने हमें जगाया।।

व्याख्या:–

मैं तो आज सबसे यही कहती हूं कि आज जो हम सब इस महोत्सव में एकत्रित हुये हैं वह किसका नेह निमन्त्रण है? किसके स्नेह–रस से युक्त मीठे शब्दों ने हमें सोते से जगा दिया है? मात्र हमारे श्री बाबू जी महाराज़ की कृपा ने ही यह कमाल कर दिखाया है।

जैसे–जैसे हमें लगा कि हमारा अन्तर जाग उठा है तो लगा कि हमारा हृदय आनन्द–जागरण से उसी तरह खिल गया है जैसे सरोवर में कमल–पुष्प खिल आया हो, पर अन्तर सरोवर में जल बरसाने वाला वह है कौन?

तो सुनिये! जब सान्सारिक–मोह–निद्रा से हमारा अंतर जाग गया तो मैंने पाया कि सामने उज्जवल सहज–मार्ग है और समक्ष में सरल मुख–मुद्रा युक्त मुख है जिस पर दृष्टि पड़ते ही, मानों नेत्र चकित से रह गये हैं। उस पावन मुखारबिन्दु का दर्शन पा कर मुझे पता लग गया कि यह दैविक, जागरण–गीत मुझे किसने सुनाया है। इस पावन मुख का दर्शन पा कर लगा कि मानों हम अब तक युगों से सो रहे थे और इसलिए कदाचित् हम अपने 'वतन' की वापसी की राह नहीं पा सके थे परन्तु आज ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानों कोई वतन की वापसी के लिए हमारा हाथ पकड़ने को तैयार खड़ा है।

आज मैं यह भी पा रही हूं कि कैसी अलौकिक एवं दिव्य–छवि समक्ष में प्रत्यक्ष हो उठी है कि जिन्हें निहार कर मानों अंतर की समस्त भौतिकता पिघल कर बाहर निकलती जा रही है और उस विराट छवि का दर्शन पा कर मन समझ गया है कि यह अलौकिक एवं दिव्य प्राणाहुति रूपी रस की वर्षा कौन कर रहा है।

अरे अचानक मुझे यह क्या हो गया है कि उनके अन्तर्ध्यान होते ही मेरे मन का चैन चला गया और पुनः उस दिव्य छवि का हृदय में दर्शन पाने के लिए मेरा अन्तर जल से निकाली हुई मछली की भाँति तड़प रहा है। इस तरह से अन्तर में तड़प का जन्म हो गया है जिसके बारे में श्री बाबू जी महाराज ने मुझे एक पत्र में लिखा था कि "तड़प अपना रास्ता खुद टटोल

लेती है।" ऐसी दर्द भरी प्रतीक्षा मेरे मन में उभार लाने वाले वे स्वयं ही हैं, यह बात मन स्वयं ही समझ गया है।

मेरा तो अब यह हाल हो गया है मेरे लिए न तो कभी रात्रि होती है और न कभी प्रातः ही होती है। इतना ही नहीं अन्तर मानों सुषुप्तावस्था में डूब गया है जो कभी जगता ही नहीं। कदाचित् इसलिए कि जागने पर वह वियोग की व्यथा को सहन नहीं कर पायेगा। कुछ ऐसा हो गया है कि लगता है कि स्वयं ही श्वांस का आभास पाते ही मानों उनके आने की आहट समझ कर मन उनसे मिलने को भाग पड़ता है। यह आहट किधर से आ रही है यह जानने की इच्छा जाग उठी है।

सच तो यही है कि अन्तर–दृष्टि ने जबसे अपने बाबू जी का दर्शन पाया है वाह्य पलकों ने स्वयं को सदैव के लिए बन्द कर लिया है। इतना ही नहीं, मुझे लगता है कि मेरे जी को भरमा कर कोई स्वयं में लय करके ले गया है।

मैं सोच रही हूं कि यह किसका दैविक कमाल है? यही पाती हूं कि यह मेरे श्री रामचन्द्र–मिशन का ही कमाल है जो चन्द्र के समान दिन–दिन कला–कला बढ़ता जा रहा है ओर यही कारण है कि अभ्यासियों के मन चन्द्र के समान दिन–दिन ज्योति से जगमगाते जा रहे हैं। आज मेरी समझ में आ गया कि हमें ऐसा सौभाग्य हमारे श्री बाबू जी महाराज ने ही प्रदान किया है।

आपकी यह 'संध्या' इस गीत में यही कह रही है यह सब प्रभाव इसका ही है कि वे अपनी प्राणाहुति–शक्ति द्वारा दिव्य अमृत इस हमारे अन्तर में निरन्तर भर रहे हैं। भला आप ही बतायें कि हमें अपने हृदय से इस तरह अपनाने वाला भला इनके अतिरिक्त और कौन हो सकता है।

गीत संख्या–15

प्रेमी बहुतेरे, प्रेम निभाने वाला कोई–कोई

प्रेमी बहुतेरे, प्रेम निभाने वाला कोई–कोई।
मंज़िल ऊंची पै चढ़ के जाने वाला कोई–कोई।।
हालत भी खोई–खोई, मनवा भी सोया–सोया।
रहबर मिल जाये, तो भी पहुंचन वाला कोई–कोई।।
हृदय की तंत्री खुली, मन की मुराद मिली।
लय में लय होकर, गान गाने वाला कोई–कोई।।
पिण्ड से पीछा छूटा, ब्रह्म से नाता जूटा।
सीधे धारा में पार जाने वाला कोई–कोई।।

मारग सहज सा आया, दाता 'बाबू जी' सा पाया।
ईश्वर–धारा में मन नहलाने वाला कोई–कोई।।
प्राणों की आहुति मिली, योगी की शक्ति मिली।
अन्तर–दशा में निखर, मिलने वाला कोई–कोई।।
सत् है सतत् स्मरण, चित हैगा ध्यान उनका।
आनन्द स्वरूप वे हैं, पाने वाला कोई–कोई।।
चले हैं वतन की ओर, पहुंचेंगे ज़रूर 'संध्या'।
उनकी बहार, शक्ति लाई ऐसा होई–होई।।
प्रेमी बहुतेरे, प्रेम निभाने वाला कोई–कोई।।

व्याख्याः–

संध्या कहती है कि हममें से ईश्वर की भक्ति और 'उससे' प्रेम करने वाले तो बहुत लोग हो सकते हैं और होंगे किन्तु प्रेम को उसकी (प्रेम की) पराकाष्ठा तक पहुंचा कर हम लक्ष्य को प्राप्त कर लें ऐसा व्रत निभाने वाला तो कोई विरला ही निकलता है। बस यही कमी रह जाती है कि 'ईश्वर को प्राप्त करके ही रहेंगे' ऐसा व्रत ले कर मन को श्रेष्ठ–स्थिति में रखकर आगे जाने वाला कोई बिरला ही निकल पाता है।

यह प्रश्न उठ सकता है कि आखिर इसकी पहचान हमारे पास क्या है? तो सुनिये, ऐसे अभ्यार्थी की दशा का अनुभव इससे ही लगने लगता है कि वह सबको कार्य करता दिखाई पड़ता है परन्तु उसका मन तो उसी आध्यात्मिक–दशा में डूबा रहने लगता है जो उसे 'मालिक' के ध्यान में रहते हुए प्राप्त होती है। यह अवश्य है कि यद्यपि सहज–मार्ग साधना में श्री बाबू जी महाराज सा सहज पथ प्रदर्शक हमें मिल भी गया जो अपनी प्राणाहुति–शक्ति का सहारा भी प्रदान करते चलते हैं तो भी मन को हर उन्नत–अवस्था में डुबोये रखने का अभ्यास न कर पाने के कारण लक्ष्य तक पहुंचने का सौभाग्य किसी को ही मिलता है। यह अनुभूति भी अपने में अनोखी ही होती है कि हृदय के मानों सारे आवरण हट गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है अन्तर में कि मन सदियों से जिसे चाह रहा है, खोज रहा है, वह हमें मिल गया है। यह भी सत्य मुझे आज उज्जवल हो गया लगता है कि अनुभूति में लय–अवस्था प्राप्त करते हुए अनुभूति की लय में ही 'उनका' गुणानवाद गाने वाले अभ्यासी कोई विरले ही होते हैं।

सहज मार्ग साधना द्वारा मुझे स्वयं ऐसा अनुभव होने लगा कि मानों पिण्ड–देश अर्थात् पाँचों भौतिक–तत्वों से मैं परे रहने लगी हूं। इसका अर्थ ही यह है मैं अपने शरीर में नहीं बल्कि 'उनमें' ही रह रही हूं अर्थात् सारूप्यता की दशा उन्होंने ही कृपा करके मुझे प्रदान की है। यह सारूप्यता की दशा ही मानों संकेत होती है हमारे लिए कि तेरा नाता अब ब्रह्म से हो गया है और इसी नाते मुझे स्वयं अपना फैलाव या पसारा कुल ब्रह्मांड में प्रतीत होता है इसीलिए मैंने यह देखा कि सहज–मार्ग की ऐसी सहज –धारा में डूब कर आध्यात्मिक पथ को पार करने वाला कोई ही होता है।

आज मैंने यही पाया कि अपने श्री बाबूजी महाराज सा दाता अर्थात् समर्थ सद्गुरु पाकर और उनके द्वारा प्रतिपादित सहज–मार्ग को अपना कर ही हम अपने मन को ईश्वरीय धारा में नहाता हुआ पाते रहते हैं।

संध्या पुनः कहती है कि हमारा सौभाग्य तो देखिये कि आध्यात्मिक उन्नति में चार–चाँद लगाने के लिए हमें अपने बाबू जी से प्राणाहुति द्वारा ईश्वरीय–शक्ति का अन्तर में निरन्तर प्रवाह भी मिल गया है किन्तु ऐसी दिव्य दशा में अभ्यासी के अन्तर का निखार होता जाये, ऐसा अभ्यासी कोई ही निकल पाता है, सब ऐसे नहीं हो पाते हैं।

आध्यात्मिक दशा के रूप में यदि आज मुझसे पूछा जाय कि 'सच्चिदानन्द' की दैविक–दशा क्या है? तो एक अभ्यासी के शब्दों में मैं केवल इतना ही कह सकूंगी कि 'सत् ही सतत्–स्मरण है चित्त और ध्यान है जो सदा 'मालिक' में लय रहे तभी ऐसा प्रतीत होता है कि आनन्द स्वरूप मेरे बाबू जी महाराज ही हैं जो दैविक–समर्थ शक्ति का प्रतिरूप हैं।

आज अन्तर्दशा की अनुभूति मुझे यह कहने को मजबूर कर रही है कि वतन अर्थात् परम–लक्ष्य की ओर उठे क़दम लक्ष्य तक अवश्य पहुंचेंगे क्योंकि मेरे श्री बाबू जी का शुभागमन दिव्य ईश्वरीय–शक्ति का अविरल–धारा प्रवाह हम सबके लिए लाया है इसीलिये आज मैं कह रही हूं ऐसा हो कर ही रहेगा। हमें लक्ष्य की प्राप्ति ज़रूर होगी।

गीत संख्या–16

अनुपम हैं, अनूठे हैं, श्री बाबू जी हमारे हैं,

(रचना काल–30 अप्रैल, 1979)

अनुपम हैं अनूठे हैं, श्री बाबू जी हमारे हैं।
सहज–मारग के दाता, दिल के मालिक ये हमारे हैं।।
नहीं था ईश को देखा, नहीं उस शक्ति को परखा।
लिए वह शक्ति इच्छा में, धरणि–तल ये पधारे हैं।।
अहम् आबाद है इनसे, ये हर चेहरे की सुन्दरता।
हर एक दिल इन पै न्योछावर, ले प्राणाहुति पधारे हैं ।।
'सहज–मारग' है वह शम्मा, जो बाबू जी से रौशन है।
हैं परवाने यहाँ हर दिल, सहज गति से उजारे हैं।।
करें क्या आज निज सौंदर्य पर रीझे से फिरते हैं।
वो छवि माधुर्य क्या कहिए, कि जिनकी छवि पै वारे हैं।।
शहंशाही जो बख़्शी है, गुलामी अपनी दे कर के।
परें न पाँव धरती पर, कहें क्या वो नज़ारे हैं।।

हुआ है आज बेरंग ये ज़माना या नज़र अपनी।
अलौकिक छवि नयन खोये , ये जीवन-धन हमारे हैं।।
ख़ुदा ख़ुद ही न्योछावर है, इन्हें जो देखा धरती पर।
ज़मी ने पाँव चूमे हैं, ये दुनियाँ हित पधारे हैं।।
ये ऐसी दिव्य छवि है, डूबे रहते जी नहीं भरता।
जो उबरे भी तो देखें क्या, जो प्राणाहुति के मारे हैं।।
पलक भीगी हृदय आनन्द, पुलकित हम अभ्यासी-गण।
करें वंदन है अभिनन्दन श्री बाबू जी पधारे हैं।।
चमन उस दिव्य-शक्ति का, है फूला फूल बाबू जी।
कि ख़ुशबू 'लाला' की 'संध्या' हर एक दिल को निखारे हैं।।

व्याख्याः-

अपने श्री बाबू जी महाराज की संध्या कहती है कि आज श्री बाबू जी महाराज हमारे मध्य विराजमान हैं, इनके बारे में मैं मात्र इतना ही लिख सकती हूं कि ये अपने में अनुपम हैं, अनूठे हैं। हाँ मानव-मात्र की आध्यात्मिक-उन्नति के लिए सहज सा मार्ग लाने वाले ये ही हैं। इतना ही नहीं मुझे लगता है न जाने कैसे स्वतः ही ये हम अभ्यासियों के दिलों के 'मालिक' बन बैठे हैं।

अब तक तो हम यही सोचते थे कि ईश्वर जाने कैसा है एवं उनकी शक्ति क्या है? इसका अनुभव करने को भी नहीं मिला परन्तु आज मैं यह कह सकती हूं कि अपने श्री बाबू जी द्वारा मात्र उनकी इच्छा-शक्ति का इशारा पा कर, स्वयं ईश्वरीय-शक्ति का प्रवाह हृदय में पा कर हमें लगता है कि धरा पर इनके (श्री बाबू जी) रूप में वह परम शक्ति उतर आई है।

इन पंक्तियों में 'अहं+आबाद' के दो अर्थ हैं- एक तो आज अहमदाबाद में महोत्सव मनाया जा रहा है सो यह शहर इनके यहाँ पधारने से मानों आबाद हो गया है अथवा खिल उठा है। दूसरे आज मैं यह अनुभव कर रही हूं कि जहाँ पर अब तक अहं का राज्य था (मुझमें) वहाँ अब इससे हृदय ख़ाली होकर दिल में ये ही बस गये हैं।यही कारण है कि आज महोत्सव में उपस्थित सभी अभ्यासियों के मुख मानों दैविक-सौन्दर्य से दमक उठे हैं। इतना ही नहीं मैं देख रही हूं कि हर अभ्यासी का दिल मानों प्यार से इन पर बलिहार हुआ जा रहा है । जानते हैं क्यों? क्योंकि सबके हृदय इनकी प्राणाहुति-शक्ति के प्रवाह से प्लावित हैं।

यह सहज मार्ग रूपी शम्मा मेरे श्री बाबू जी महाराज से ही जगमगा रही है और इसकी तारीफ़ यह है कि इस शम्मा पर हम अभ्यासी रूपी पतंगे अपना सर्वस्व न्योछार किये हुये बैठे हैं। ऐसा लगता है कि हर दिल सहज गति से ही उज्जवल हो गया है।

मैं क्या लिखूं-मुझे तो आज ऐसा एहसास हो रहा है कि मैं स्वयं अपने ही दैविक-दशा रूपी सौन्दर्य पर रीझी सी बैठी हूं। जानते हैं आप कि इस दशा को क्या कहते हैं? मात्र सारूप्यता अर्थात् ये ही मुझमें समाये हुए बैठे हैं। तब फिर भला मैं कैसे बताऊं कि किस दैविक स्वरूप

में लय हो गई हूं। यह अलौकिक–छवि और माधुर्य क्या बखाने जा सकते हैं कि जिनके विराट रूप एवं दिव्य–छवि में मैं आज विलीन हो गई हूं।

आज न जाने क्यों रह–रह कर मेरा हृदय मानों पुनः गौरवान्वित हो उठता है कि ऐसी दिव्य–हस्ती ने मुझे अपने चरणों में स्वीकार कर लिया है। इस बात को सोच–सोच कर मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानों उन्होंने मुझे अपनी गुलामी नहीं बल्कि शहंशाही प्रदान कर दी है यही कारण है कि आज मुझे ऐसी दशा लग रही है कि धरती पर चलते हुए भी मानों मेरे पैरों को इसका स्पर्श प्रतीत नहीं हो पा रहा है। इतना ही नहीं, लगता है आगे आने वाली दशा के जो अब समक्ष में है, बारे में तो अभी कुछ कह ही नहीं सकती हूं।

हाँ कुछ ऐसा अवश्य प्रतीत हो रहा है कि जब आने वाली दशा में झांक कर देखती हूं तो ऐसा पाती हूं कि मानो आने वाली दशा बिल्कुल सादी है जिसमें न आनन्द है, न खुशी। ऐसे किसी भी रंग का एहसास नहीं है। जब मैंने श्री बाबू जी से इस बारे में पूछा तो उन्होंने यही कहा कि "आखिर रंगीनी से कब तक चिपकी रहोगी।" इसके बाद ही इस आगामी दशा ने मेरे में प्रवेश पा लिया था क्योंकि महोत्सव में रहते हुए भी अब मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि मानों यहाँ का परमानन्दमय–वातावरण मुझे स्पर्श नहीं कर पा रहा है और मैं चकित रह गई कि यह क्या हो गया है मुझे। या तो मेरी निगाह ही बेरंग हो गई है या वातावरण ही मेरे लिए बेरंग हो गया है। फिर मानों अचानक ही मुझे याद आया कि ये सारा करिश्मा इनका ही है जो सामने बैठे हैं। ये तो अलौकिक हैं, इनके नयन शून्य से, प्रतीत हो रहे हैं। स्वतः ही ये मेरे जीवन–सर्वस्व हो गये हैं।

अपने अन्तर में आज इस अलौकिक–छवि का दर्शन पा कर मुझे ऐसा लग रहा है कि स्वयं ईश्वर भी इस दिव्य–छवि पर निसार हो गया है। इनके दिव्य–चरणों को चूमने अर्थात् स्पर्श करने का सौभाग्य आज इस धरा को प्राप्त हो गया है क्योंकि इसे मालूम है कि संसार के प्राणियों के आत्मिक–उद्धार हित आज ये ही परम आदि–शक्ति अवतरित हुई है। वास्तव में ये आदि शक्ति भूमा का ही मानों प्रतिरूप हैं इसका यह प्रत्यक्ष प्रमाण भी मुझे मिल रहा है कि इनमें (श्री बाबू जी में) कितना भी लय रहने का प्रयत्न करती हूं किन्तु ऐसा लगता है कि मानों मैं इनमें पूर्ण रूप से लय नहीं हो पाती हूं, पुनः पुनः केवल स्पर्श पाकर उबर आती हूं। यद्यपि यह आवश्यक है कि उबर आने पर भी अनुभूति यही रहती है कि मानों अब इनकी ही प्राणाहुति दिव्य–शक्ति में डूब गई है।

अहमदाबाद के इस महोत्सव में बैठे हुए मेरी पलकें आज स्वयं भींग गई हैं और मैं ऐसा ही पा रही हूं कि हम सब अभ्यासियों के हृदय पुल्कित अथवा प्रफुल्लित हुए पुनः–पुनः आपके पावन चरणों की वन्दना कर रहे हैं। मानों कह रहे हैं कि आप हमारे इस महोत्सव में जो सम्मिलित होने पधारे हैं तो हमारी वन्दना एवं अभिनन्दन स्वीकार करें।

मुझे तो आज ऐसा ही लग रहा है कि यह महोत्सव मानों दिव्य–शक्ति का चमन है और इस बाग़ में भूमा की छवि का पराग भरे हुए समक्ष में यह पुष्प खिला हुआ है जिन्हें हम श्री

बाबू जी के रूप में निहार रहे हैं। जो दिव्य-शक्ति प्रवाह हमें इनसे मिल रहा है वह ऐसा लग रहा है कि मानों इनके समर्थ सद्गुरु श्री लाला जी की दैविक-सुगन्ध इनके द्वारा समस्त में फैल रही है।

गीत संख्या-17

आये हैं हमारे बाबू जी

(रचनाकाल-25.11.77)

आये हैं हमारे बाबू जी, ख़्यालों में जो आने वाले।
धरती पर प्रगटे हैं, जनमें, आतम-प्रकाश भरने वाले।।
उस दिव्य देश की दिव्य-किरण, चहुं दिशि में फैलाने वाले।
बैठे हैं दिलों के आसन में, स्वागत सबका लेने वाले।।
जो शक्ति सबमें सोई थी, इन्सानों में रमने वाली।
उस शक्ति को जागृति देकर, इक नया मोड़ देने वाले।।
साक्षात्कार ईश्वर का हो, हर मानव मानवता सीखे।
सम्पूर्ण विश्व को आये निज, संदेश सदा देने वाले।।
मारग है सहज सा बतलाया, ईश्वर प्रकाश से उज्जवल कर।
पावन प्राणाहुति शक्ति से, उर के प्याले भरने वाले।।
इनकी करुणा का क्या कहिए, आँचल में छुपाये रखते हैं।
हम ध्यान में डूबे रहते हैं, दुनिया में मगन रहने वाले।।
देखा है मैंने ध्यान कभी, डिगता न डिगाये अब हमसे ।
जितना ही निकालें हम इसको, उतना ही लय करने वाले।।
बीते दिन बहुत वियोग हुये, अब योग मिला, हुये योगी हम।
हर पल है हमारा इनके लिये, डग सहज-मार्ग बढ़ने वाले।।
जीवन है साम्य-समाधि, सहज गति से चलता ही जायेगा।
पावन हो धरा जिधर जायें, दृढ़ता ऐसी भरने वाले।।
न्योछावर है इनकी इन पर 'संध्या' सुध-बुध बलिहार चली।
स्वागत करती ये वसुन्धरा, पावन सिंगार लाने वाले।।
आये हैं हमारे बाबू जी, ख़्यालों में जो आने वाले।।

यह गीत तिनसुकिया में आश्रम के उद्घाटन के समय लिखा गया था। संध्या कहती है कि आज हमारे इस आश्रम में साक्षात् श्री बाबू जी महाराज स्वयं पधारे हैं और हम सबके मध्य

विराजमान हैं। हमारे विचारों में ही अब तक समाये रहते आये हैं। इनका दर्शन पाकर आज मुझे लग रहा है कि अवश्य ही ये पृथ्वी पर मानव-मात्र के अन्तर में आत्म प्रकाश को भरने वाले हैं। इतना ही नहीं इनको अपने मध्य पाकर लग रहा है कि मानों दिव्य आदि-देश की दिव्य-किरणों को अपनी दैविक इच्छा-शक्ति द्वारा चारों दिशाओं में फैला रहे हैं। हमारे समक्ष तो वे ऐसी ही प्रतीति प्रदान कर रहे हैं कि मानों यह हमारा स्वागत स्वीकार करके हमें बड़भागी बनाने हेतु हमारे आश्रम में बैठे हुए हैं।

मुझे ऐसा एहसास हो रहा है कि जो दिव्य-शक्ति हम इन्सानों के अन्तर में सुषुप्तावस्था में पड़ी थी उस परम शक्ति को हमारे अन्तर में प्रवाहित कर थपथपा कर जागृति देते हुए इसे नवीन मोड़ प्रदान कर रहे हैं कि जाग जा और हमारे अपने ही अन्तर में विद्यमान ईश्वर का साक्षात्कार पा ले, इतना ही नहीं ईश्वर का साक्षात्कार भी हो और मानव सही अर्थ में दैविक मानव की श्रेणी को पुनः प्राप्त करें यह सन्देश सम्पूर्ण विश्व के हित लाये हैं और साथ ही कृपा की वर्षा भी लाये हैं। वास्तव में तभी तो खुद में ही खोया मानव अपना सहज रूप फिर से प्राप्त कर सकेगा।

हमारे श्री बाबू जी ने हमारे लिए कितना सरल सा सहज-मार्ग प्रस्तुत किया है और इसमें यह विशेषता रक्खी है कि साक्षात्कार की परम-दशा तक पहुंचने के लिए अपने इस सहज-पथ को ईश्वरीय-प्रकाश से उज्ज्वल भी कर दिया है। इतना ही नहीं साधना को सार्थक बना देने की क्षमता को प्रदान कर देने के लिए अपनी प्राणाहुति शक्ति का प्रवाह भी हम अभ्यासियों के हृदय रूपी प्यालों में प्रवाहित कर इन्हें भर रहे हैं जिससे एक दिन अभ्यासियों को ईश्वर-साक्षात्कार अवश्य ही मिले।

मैं बराबर यह अनुभव कर रही हूं कि दया का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता है। ऐसा लगता है कि जैसे वह माँ के समान अपने बच्चों की गंदगी की ओर न देख कर अपने दैविक-आंचल की छाँव में ही सदैव छुपाये रखते हैं जिससे हमारे अन्तर को भौतिकता की बयार गंदा न कर सके। मुझे तो ऐसा लगता है कि आज जो हमारा अन्तर सांसारिक आनन्द में ही मगन रहता था वह स्वतः ही ईश्वरीय-ध्यान में ही डूबा रहता है। इतना ही नहीं मेरी अनुभूति यह बता रही है कि जब हमने ध्यान आरम्भ किया था तब अन्य विचारों के आते रहने से मेरा ध्यान इधर-उधर भटक जाता था परन्तु आज यदि मैं ध्यान में डूबे मन को निकालना भी चाहूं तो यह मेरे ध्यान की सीमा से इतना परे हो गया लगता है कि मेरे विचार इसको डिगा ही नहीं पाते हैं। मुझे लगता है कि विचार भी दशा के आनन्द-रस का स्पर्श पा कर इसमें लय ही रहते हैं। इसका कारण यही लगता है कि भौतिक संसार की रसानुभूति से हम इतनी दूर हो गये थे कि क्रमशः हमारा अन्तर्मन वियोग की व्यथा में ही डूब गया था। आज मैं अनुभव कर रही हूं कि अपने बाबू जी की कृपा से अन्तर को पुनः वह दैविक-योग प्राप्त हो गया है इसीलिए यह अब इससे हटना नहीं चाहता है। इतना ही नहीं आज मेरी दृष्टि जब अन्तर में जाती है तब ऐसा अनुभव करती हूं कि मानों यह आत्म-निवेदन की साँची दशा का प्रतिरूप ही हो गया है और पुनः पुनः

कह रहा है कि ओ मेरे बाबू जी मेरे जीवन का हर पल अब तुम्हारे लिए है। यही कारण है कि मैं देखती हूं कि मेरे क़दम सहज मार्ग में सतत् ही उन्नति पाते जा रहे हैं।

आज मैं यह कह सकती हूं कि साम्यावस्था ही मेरा जीवन है एवं साम्य-गति ही मेरी रहनी है एवं सहज-समाधि अवस्था ही मेरा स्वरूप हो गया है। इतना ही नहीं मुझ परइतनी कृपा-दृष्टि है कि मुझे लगता है कि मैं जिधर निकल जाती हूं वह धरा पावन हो जाती है। ऐसी दृढ़ता मेरे समक्ष मुझमें इसलिए है कि यह दशा मेरी स्वतः की अनुभूति है।

आज पुनःपुनः मुझे यही उमंग आती है कि सामने बैठे अपने श्री बाबू जी पर ही मैं न्योछावर हो जाऊं क्यों कि संध्या तो सदैव से इनकी ही थी, इनकी ही है और इनकी ही रहेगी, इसके अतिरिक्त इसे कुछ स्मरण नहीं आता है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानों सारी पृथ्वी ही आज इनके स्वागत में आंचल बिछाये हुए है क्योंकि आज ये ही समर्थ हैं। इसके (पृथ्वी के) सौन्दर्य को पुनः पावन, दिव्य एवं सहज निखार से भर देने वाले ऐसी ही दिव्य-शक्ति के प्रतिरूप हमारे समक्ष श्री बाबू जी महाराज दिव्य-विभूति के रूप में हमारे तिनसुकिया-आश्रम में विराजमान हैं।

गीत संख्या-18

जलता है दीप लाला का

रचना काल- श्री पार्थसारथी के प्रेसीडेन्ट होने के डिक्लेरेशन के बाद का प्रथम महोत्सव-लखीमपुर अप्रैल-1984

जलता है दीप लाला का, जलता ही रहेगा।
चेहरे बदलते जायेंगे, 'वह' ज़िन्दा रहेगा।।

बलिहारी आज मैं हूं जो संकल्प तुम्हारा।
कलियुग यह रह न जाये, हो सतयुग का सबेरा।
'बाबू' की शक्ति से, यह बदलता ही रहेगा।।

हर कण में है सुगन्ध उसी दिव्य फूल की।
हर मन में मनोतीत-छवि बसी है उन्ही की।
तू ऐसा पुष्प आया, जो खिलता ही रहेगा।।

तन था ख़ुदा का नूर, उतारा था 'लाला' ने।
अनुपम स्वरूप दिव्य, सवाँरा था 'लाला' ने।
'लाला' का लाल सबको लुभाता ही रहेगा।।

ममता भरे हृदय में समेटे हैं ज़माना।
मारग-सहज शमाँ पै शलभ, बनते है जाना।

ये आया आफ़ताब, चमकता ही रहेगा।।
कैसा कमाल है यह उनकी प्राण–शक्ति का।
युग भूल न पायेगा, करम है यह उन्हीं का।
तपते हृदय को शान्ति से दुलराता रहेगा।।
जादुई दृष्टि उनकी है, जायें तो हम कहाँ।
तुम ही हमारे 'बाबू', रहें कैसे हम यहाँ।
आ मेरे लाल, कह के बुलाता ही रहेगा।।
'बाबू' के जिगर–टुकड़े तुम्हें, मेरा नमन है।
'बाबू' की दुआ तुमको, तुममें उनकी लगन है।
जो काम दिया, उसमें फ़ना होता रहेगा।।
'संध्या' की जान तुम हो, जीवन मिशन तुम्हारा।
श्वांसों में है समाया वह है सबका प्राण प्यारा।
अभ्यासियों के मन में 'वह', मुस्काता रहेगा।।
ममता भरी आँखों में डुबोता ही रहेगा।।
जलता है दीप 'लाला' का जलता ही रहेगा।।

एक बार सद्‌गुरु श्री लाला जी साहब ने अपने एक परम प्रिय शिष्य को लिखा था कि 'राम चन्द्र (बाबू जी) चिराग़े–ख़ान्दान होगा।' लोग अब तक इनका अर्थ यही लगाते रहे हैं कि श्री बाबू जी लाला जी साहब के आध्यात्मिक–उत्तराधिकारी होंगे परन्तु लाला जी सहब ने कोई मिशन नहीं खोला था अतः उनके उत्तराधिकारी होने का कोई अर्थ ही नहीं है। उन्होंने तो सन्त–मत चलाया था। श्री लाला जी साहब आदि–केन्द्र 'भूमा' की शक्ति को बाबू जी के रूप में उतार कर लाये थे अतः वे तो (श्री बाबू जी महाराज) भूमा की शक्ति के प्रतिनिधि हो सकते हैं किसी अन्य के नहीं। यही नहीं भूमा की आदि–शक्ति हो या ईश्वरीय–शक्ति हो अर्थात् अवतार हो, हम इनमें लय हो सकते हैं लेकिन ये किसी में मर्ज हो जायें वह असंभव है। स्वयं ईश्वर भी अवतार में मर्ज नहीं हो सकता है। बस जितनी शक्ति की धरा पर आवश्यकता होती है, उतनी ही शक्ति ईश्वर से अवतरित अर्थात् अलग हो जाती है और वही अवतार कहलाती है। इसी प्रकार भूमा की परम–शक्ति की इस डिवाइन–परसनैलिटी (दिव्य विभूति) में भी कोई मर्ज नहीं हो सकता है और वह दिव्य–छवि स्वयं भी किसी में मर्ज नहीं हो सकती है, अतः समर्थ सद्‌गुरु ने इनमें (श्री बाबू जी में) लय रहकर इनकी शरीर–सुरक्षा की अद्‌भुत ज़िम्मेदारी को निबाहते हुए अपना दैविक–कर्त्तव्य एवं प्रिय गुरुतर कार्य पूर्ण किया। सत्य तो यह है कि लय–अवस्था का अंगरेज़ी भाषा में समकक्षी शब्द न मिलने से 'मर्जिंग' शब्द ही मिल पाया है और इसीलिए 'लय' के लिए इसी शब्द का प्रयोग किया जाता है।

व्याख्या:-

आज संध्या मगन होकर गा रही है कि हमारे दादा जी समर्थ सद्‌गुरु श्री लाला जी साहब का जलाया हुआ यह दैविक-चिराग़ आज भी जल रहा है और सदैव जलता ही रहेगा श्री बाबू जी के रूप में। चेहरे और नाम अवश्य ही बदलते जायेंगे लेकिन इनके रूप में ही धरा पर विद्यमान रहकर भूमा की सतत् शक्ति प्रकृति का कार्य पूर्ण करेगी। यह विराट् रूप हमेशा है ओर हमेशा रहेगा।

ओ मेरे बाबू जी! आप-परिवर्तन का दैविक गुरुतर-कार्य पूर्ण करने के लिए धरा पर अवतरित हुए हैं। इस कार्य की महत्ता पर हम सब बलिहार जाते हैं। यह गुरुतर कार्य है कलियुग को दूर करके सत्-युग को लाना। आपका यह कार्य आपकी अलौकिक-शक्ति से अवश्य ही पूर्ण होगा और हम सब भी सतयुग का यह सबेरा देख पायें, ऐसी दृढ़ता हममें मौजूद है।

आज मैं यह अनुभव कर रही हूं कण-कण में इस दिव्य-पुष्प (श्री बाबू जी) की प्राणाहुति-रूपी दैविक-सुगन्ध भर गई है। मैं यह भी महसूस कर रही हूं कि हर अभ्यासी के मन को मोहने वाली इनकी दिव्य छवि विराट रूप में भर गई है। यह भी ध्रुव सत्य है कि तू दिव्य-पुष्प स्वरूप है इसलिए सदा खिला ही रहेगा।

वास्तव में मैंने यही पाया है कि आपका भौतिक शरीर ऐसा है मानों साक्षात् ख़ुदा का नूर उतर आया हो क्योंकि उसका दर्शन पाते ही हमें प्राणाहुति का प्रवाह अन्तर में मिलना शुरू हो जाता है। आज भी उनकी याद आते ही पावन प्राणाहुति के प्रवाह से हृदय प्लावित हो उठता है। इतना ही नहीं अपने लाड़ले के दिव्य-स्वरूप को श्री लाला जी साहब ने ही संवारा और सजाया था। वही समर्थ सद्‌गुरु का लाल हमेशा प्राणिमात्र के मन को अपनी दैविक-छवि से आकर्षित करता रहेगा।

मैंने तो केवल इतना ही जाना है कि अपने ममता भरे विराट् हृदय में ये समस्त विश्व को समेटे हुए हैं अतः हम अभ्यासियों को तो ऐसा ही प्रयास करना है कि अपने श्री बाबू जी महाराज द्वारा उतारे गये सहज मार्ग की साधना अपनाकर शलभ की तरह से अपने परम लक्ष्य को पाने हेतु मर मिटें। हमारे मध्य बाबू जी महाराज के रूप में ऐसा आफ़ताब (सूर्य) प्रकट हुआ जो सदैव चमकता ही रहेगा और हम इसके दिव्य-प्रकाश में सदैव आध्यात्मिक-पथ पर अग्रसर होते जायेंगे।

मैं क्या लिखूं कि इनके द्वारा पाई हुई प्राणाहुति-शक्ति का यह कैसा कमाल है कि युग-युगान्तर इसकी गरिमा को कभी भी भुला नहीं पायेगा और इनके करम (कृपा) को भी मानव-जीवन के अशान्तिमय हृदय की तपन को सदैव शांत करता रहेगा।

अपने अभ्यासी बच्चों के लिए आपकी कृपा भरी जादू मय दृष्टि ऐसी है कि इससे कोई बच कर निकल ही नहीं सकता है क्योंकि ये समस्त विश्व के लिए ही अवतरित हुए हैं कदाचित् इसीलिए आपने जब यह देखा कि आपके बच्चे, आपको अपने समक्ष में न पाकर यहाँ कैसे जीवित रहेंगे इसीलिए हमें यह प्रतीति और ऐसी अनुभूति भी प्रदान की कि हमें चारों ओर से

ऐसी ही ध्वनि सुनाई दे रही है कि मानों आप हमें सदैव 'आ मेरे लाल' कहकर आवाज़ दे रहे हैं। आपके इस अहेतुकी ममत्व पर हमारा सर्वस्व न्योछावर है।

मेरे पास बैठे हुए ओ बाबू जी के मनस्-पुत्र अर्थात् रिप्रेसेन्टेटिव भाई पार्थसारथी राजगोपालाचारी जी (मद्रास) आज आपको मेरा प्रणाम है क्योंकि आप मेरे बाबू जी के रिप्रेसेन्टेटिव हैं एवं मेरे गुरु भाई हैं। उनकी (श्री बाबूजी) दुआ सदैव आपके साथ में है एवं आपमें उनके दिये हुए कार्य को करने की लगन भी मौजूद है अतः हमें आशा है कि आप अपने मालिक के सौंपे हुये कार्य को पूर्ण करने में फ़ना रहेंगे।

ओ मेरे बाबू जी! अपनी बिटिया संध्या की जान आप हैं। इसकी जीवन-धारा में अपने मिशन और अभ्यासी-भाइयों की सेवा का ही प्रवाह मौजूद है। मुझे ऐसा ही लगता है कि मेरी हर स्वांस आज भी आपका ही स्पर्श पा रही है। मुझे तो लगता है 'वह' हम सभी के प्राण-प्यारे हो गए हैं क्योंकि उनकी दिव्य-छवि मानों हम सबके हृदयों में समाई हुई मुस्कुरा रही है। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि आप सदैव ही अपनी ममता-भरी आँखों में डुबोये रक्खेंगे ताकि हम अभ्यासियों के मन लक्ष्य-प्राप्ति की हिम्मत से भरपूर रहें।

गीत संख्या-19

तुम्हारी याद में दुनियाँ

(रचना-काल फरवरी-85)

तुम्हारी याद में दुनियाँ कभी दुनियाँ नहीं होती।
ऊषा के मुस्कुराने पर, कभी छाया नहीं होती।।
तुम्हारे ध्यान में संसार की चिन्ता नहीं होती।
अतल की थाह पा कर, कूल की इच्छा नहीं होती।।
स्वयं पतवार बनती है, मृदुल से सिन्धु में आँखें।
जहाँ मन डूब जाता है, वहाँ सरिता नहीं होती।।
जहाँ योगी मिले योगेश से, संगम वहीं होता।
वहाँ गंगा नही होती, वहाँ यमुना नहीं होती।।
तुम्हारी याद में दुनिया, कभी दुनियाँ नहीं होती।
ऊषा के मुस्कुराने पर, कभी छाया नहीं होती।।

यह गीत मेरी स्व-रचित रचना नहीं है इसीलिए जिन आदरणीय कवि की पंक्तियों का आधार ले कर मैंने अपनी आध्यात्मिक-उन्नति की दशा को व्यक्त कर पाने में सहायता ली है, उन्हें मेरा नमन है।

व्याख्याः–

मेरे बाबू जी महराज! आपकी इस संध्या ने आध्यात्मिक–दशाओं का सार इसमें ही प्राप्त किया है कि आपको ही याद किया और आपको ही ध्यान में रखने का सतत् प्रयास किया है एवं आपकी सतत् सामीप्यता के अहसास का सहारा ही अपने अनुभवों को दिया है जिनके द्वारा ही आज दिव्य–दशाओं की अनुभूतियों के परमानन्द स्वरूप दिव्य–रसानुभूतियों में अंतस् को सदैव लय रखने में अपनी साधना को सफल बना सकी हूं क्योंकि मैंने देखा है कि आपके सतत् स्मरण में डूबे रहने के कारण मुझे कभी यह एहसास ही न रहा कि मैं इस संसार में रह रही हूं। इसका कारण यही है कि प्रातः काल हो जाने पर फिर अंधकार मिट जाता है।

यह तो आपके सतत् स्मरण में रहने का ही सुन्दर फल होता है कि दैविक–सामीप्य–गति का एहसास प्राप्त होता है पुनः जब ध्यान मात्र आपकी मौजूदगी की सतत–अनुभूति में पग जाता है तबसे फिर सांसारिक चिन्तायें सदैव के लिए विलीन हो जाती हैं। कारण यही है कि तबसे फिर ऐसा लगने लगता है कि मानों हमें दिव्यता के सागर की थाह मिल गई है और इसी से फिर हम किनारे पर चलें ऐसा मन नहीं होता है क्योंकि फिर स्वयं ही दिव्यता का सागर हमें अपने में ही मिलाये रखना चाहता है। ऐसी ही अनुभूति मिलती रहती है मानों कोई हमारा अपना प्रिय हमें अपनी गोद से अलग ही नहीं करना चाहता है।

गीत संख्या–20

क्या कहें समझें न कुछ

(सूरत का महोत्सव–30 अप्रैल, 1982)

क्या कहें समझे न कुछ, कैसे कहाँ ये रहते हैं।
हैं जुदा सबसे ये ऐसे, सबके दिल में रहते हैं।।
शून्य आँखों में समाया, है हृदय में प्यार वो।
मुस्कुरा दें जो ज़रा तो, प्राण अनगिन पलते हैं।।
जब उठाते हैं नज़र, लगता है यूं आई बहार।
जब गिरी पलकें, बड़े मासूम प्यारे लगते हैं।।
हृदय ऐसा है मुलायम, डेरा फ़रियादों का है।
याद इन्होंने किया, जिसमें अहं गल जाते हैं।।
खाली कर देती गुनाहों से भरे दिल, एक नज़र।
शक्ति अनुपम कर प्रवाहित, उर में अपने लेते हैं।।
देखा न ऐसा दिलेत्रर, प्रण उठाये जो यही।
प्राणी सब लौटें वतन, ऐसा सहारा देते हैं।।

न इन्हें शिकवा–गिला, अभ्यासी सबही प्यारे हैं।
मुस्कुराते से सदा, अपनी शरण में लेते हैं।।
है सहज–मारग सहज ये, सहजता की चरम सीमा।
सहज पायें गति सहज, जो ध्यान इनका करते हैं।।
अपनी बेनूरी पै दुनियाँ, है बहुत रोई अभी।
'संध्या' पाया तब इन्हें, बिछुड़े नहीं जब मिलते हैं।।

व्याख्या:–

आज यहाँ सूरत (शहर) के महोत्सव में मैं अनुभव कर रही हूं कि अपने श्री बाबू जी महाराज को देख कर समझ में नहीं आ रहा है कि ये यहाँ और जहाँ भी निरन्तर रहते हैं वह किस तरह से और कहाँ रहते हैं? इनसे जुदाई का आलम यह है कि मुझे ये सबके ही हृदय में मौजूद मिल रहे हैं।

इनकी आँखों की शून्यता देख कर लगता है कि यह सबसे ही क्या ख़ुद से भी जुदा है लेकिन समस्त के लिए इनका प्यार देख कर ऐसा लगता है कि मानों ये समस्त के हृदय में मौजूद हैं। बस न जाने क्यों हमारी आँखें इनकी मुस्कुराहट को देख पाने की प्रतीक्षा में ही लगातार इनके मुखारविन्द की ओर ही निहार रही हैं क्योंकि मैं देख रही हूं कि श्री बाबू जी के मुखारविन्द पर ज़रा सी भी मुस्कुराहट का आभास पाते ही यहाँ उपस्थित हम सब अभ्यासियों के प्राणों में अलौकिक ताज़गी आ जाती है।

यह कैसी अनूठी छवि हमारे समक्ष में विद्यमान है कि ध्यान में बैठने के लिए मौजूद हम अभ्यासियों की ओर जब भी इनकी दृष्टि उठती है तो यही अनुभूति होती है कि मानों हमारे हृदयों में इनके द्वारा मिल रही प्राणाहुति की लहर दौड़ जाती है। क्या कहना है उस समय का कि जब इनकी पलकें गिरी रहती हैं, तब लगता है कि मानों नन्हें बालक की तरह से नितान्त मासूम (भोली) छवि हमारे समक्ष में विद्यमान है। और तब इनके प्रति स्वतः ही प्यार से जी उमड़ पड़ता है।

इस गीत में अभी तक तो मात्र इनकी प्रिय एवं पावन–दृष्टि की कृपा के निर्झर श्रोत की ही महिमा का थोड़ा सा गान है, अब कुछ थोड़ी सी इनके विराट्–हृदय की महिमा का गान कर पाने के लिए लेखनी मचल रही है। बस मैं मात्र ऐसा ही अनुभव पा रही हूं कि इस विराट–हृदय की विशालता एवं मुलायमता का परिचय हमें मात्र इस अनुभूति द्वारा ही मिल रहा है कि अभ्यासियों के हृदयों के प्यार की याचना का मानों पावन आगार ही यह बन गया है।

ओ मेरे बाबू जी! आप मानव मात्र के उद्धार के लिए धरती पर आये हैं इसीलिए जब आप हमें याद करते हैं तो हमारा अहं स्वयं ही गलकर समाप्त होने लगता है। हम में यह शक्ति नहीं है कि अपने अहं को स्वयं ही गला सकें।

मेरे बाबू जी! आपकी दृष्टि की प्रशंसा मैं किस प्रकार करूँ। यह जिस अभ्यासी की ओर उठ जाती है उनके हृदय सारे गुनाहों, संस्कारों एवं अवगुणों से खाली हो जाते हैं क्योंकि आपकी अपनाइत भरी दृष्टि पड़ते ही मुझे ऐसा लगने लगता है कि मानों ईश्वरीय शक्ति का अविरल धारा–प्रवाह हमारे हृदयों को प्लावित करने लगता है और तब हम यह भूल जाते हैं कि यह धारा प्रवाह हमारे हृदयों को मिल रहा है अथवा हम सब आपके ही विराट् हृदय में समा गये हैं।

यह सत्य है कि भारत भूमि पर इतने अवतार अवतरित हुए हैं एवं साधु–सन्तों से सदा ही यहाँ की धरा भरी रहती है किन्तु ऐसी अनुपमेय आदि–शक्ति के श्रोत (भूमा की भी शक्ति) पर स्वामित्व पाये हुए मात्र मेरे 'बाबू जी' ही प्रगट हुये हैं तभी तो शक्ति व सामर्थ्य को देखकर आज मेरी लेखिनी भी यह लिख पाने को मचल उठी है कि मात्र आप ही हैं जो ऐसा आश्चर्यमय दैविक–प्रण लेकर पधारे हैं कि मात्र पृथ्वी का भार ही हल्का नहीं होगा वरन् प्राणिमात्र ईश्वर के ध्यान में लय रहते हुये गृहस्थी के कर्त्तव्यों को पूर्ण करते हुए अब अपने आदि–वतन (भूमा) के प्रांगण में वापस लौटेंगे। इतना ही नहीं ऐसी शक्ति एवं भक्ति से परिपूर्ण करते हुए मानव हृदयों को इस योग्य भी बनाते हैं कि वे अपने वास्तविक–वतन की ओर लौट चलें।

कितना विराट् हृदय है मेरे बाबू जी का कि इन्हें कभी भी अभ्यासियों से न तो यह शिकायत हुई है कि 'तुम सुपात्र नहीं हो' बल्कि हम तो यही जानते हैं कि आप हम सबको समान रूप से प्यार करते हैं। शायद यही कारण है कि जब भी हम अभ्यासी आपके चरणों में आते हैं आप सदैव ही मुस्कुराते हुए हमें अपने पावन चरणारविन्दों में आश्रय देते हैं।

आज इस महोत्सव में मैं इनकी इस दिव्य–महिमा का दर्शन पा कर चकित हूं। जैसा इनका सहज मार्ग सहज है वेसे ही आज इनकी ओर निहारने पर यही पा रही हूं कि यह स्वयं ही सहजता (नेचुरलनेस) एवं दैवी सादगी की चरम सीमा ही हैं। आज मेरी समझ में यही आ रहा है कि इनके दर्श एवं ध्यान पर दृष्टि को टिकाये हुए हम सहज एवं स्वतः ही श्रेष्ठ आध्यात्मिकता की सहज–गति को प्राप्त कर लेते हैं।

भला ऐसा हो भी क्यों ना मुझे ऐसा लग रहा है जब यह धरा अपना दिव्य–सौन्दर्य एवं दैविक–निखार खो बैठी थी और इससे धरा का अन्तर भी मानो रो उठा था तभी हमारे समर्थ सद्गुरु श्री लाला जी साहब ने पृथ्वी के इस दैविक–सौन्दर्य की वापसी के लिए बीड़ा उठाया था और इस दैविक–कार्य को पूर्ण करने के लिए समर्थ आदि शक्ति से सम्पन्न श्री बाबू जी महाराज को धरा पर उतार कर लाये थे। आज जब वे मिल गये हैं तो इनसे बिछुड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है।

समझ में न आये कि तुम और क्या हो

रचना काल–मुरादाबाद केन्द्र–स्थापना दिवस– महोत्सव–
21 अक्टूबर 1985

समझ में न आये कि तुम और क्या हो।
न ये हो, न वो हो, कहो और क्या हो।।
न मैं हूं, न तुम हो, रहा शेष फिर क्या,
लगता है धागा जो जुड़ता वो तुम हो।।
न उत्तर न दक्षिण, न पूरब न पश्चिम,
दिशा जो वतन की, बताये वो तुम हो।।
न दिन हो न रात्रि, न संध्या न बेला,
जो उज्ज्वल जहाँ में, सबेरा वो तुम हो।।
न भक्ति का दामन, न ज्ञानों का घेरा,
इनसे परे जो है व्यापक, वह तुम हो।।
न सीमित असीमित, न वेदों की वाणी,
नेति नेति नहीं है जहां, वहाँ तुम हो।।
न कुछ हो न कुल हो, जहां की जमा में,
नफ़ी से भी आगे ले जाये वो तुम हो।।
न खुद हो न बुत हो ना परस्तों का दामन,
ख़ुदाई दिलों का नगीना, वो तुम हो।।
ये प्राणों की आहुति से पाले जहाँ में,
तुम्हारी सदा हो, सदा तुम ही तुम हो।।
ख़ुदा हो या न हो, ये बाबू जी जाने,
'संध्या' दिलों में समाये वो तुम हो।।

व्याख्याः–

ओ मेरे बाबू जी! आपकी कृपा एवं प्राणाहुति का जो कार्य मुझे आध्यात्मिक–पथ पर चल कर उन्नति करने में सहायक हो रहा है, इससे मैं समझ नहीं पा रही हूं कि आप कौन हैं? जब तक मैं आपको पत्र में लिखती हूं कि मेरी यह दशा है तब तक दशा बदल जाती है। इस तरह से हर पग पर मैं अवाक् हुई सोचती रह जाती हूं कि आप वास्तव में कौन हैं? आज तक मैं यह नहीं समझ पा रही हूं।

मेरे बाबू जी, जब मुझे ऐसा लगा कि अब तो मैं नहीं हूं तो दूसरी ओर तुरन्त ही मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि अब आपकी सामीप्यता या मौजूदगी का एहसास भी समाप्त हो गया है। बस तब से यह अनुभव समक्ष में आया कि वास्तव में अपनाइत का जो धागा आपसे जोड़े हुये है वह धागा नहीं बल्कि स्वंय आप ही हैं।

जब मेरे अनुभव से दिशाओं का ज्ञान मिट गया तो आपने मुझे ऐसा अनुभव प्रदान किया कि वास्तव में यह सहज–मार्ग ही मेरी दिशा है जो वतन की राह बता रहा है। वह सहज–मार्ग आप ही हैं और वतन भी स्वयं आप ही हैं।

जब मुझे स्वयं लगा कि मेरे लिए न अब कभी दिन होता है और न कभी रात्रि ही आती है। न कभी प्रभात होता है और न कभी संध्या आती है, न ही मेरे समक्ष अब अभ्यास के लिए समय (काल) का कोई मूल्य रह गया है तब आपने मुझे ऐसा ही अनुभव प्रदान किया कि मानों मेरे लिए हर समय संसार में उज्ज्वल प्रातःकाल ही रह गया है और वह प्रातःकाल भी स्वयं आप ही हैं।

इतना ही नहीं, मेरे बाबू जी! अब तो लेखिनी आपको यही दशा लिखने को बाध्य हो गयी है कि "बिना भक्ति तारो तब तारिबो तिहारो है।' दूसरी ओर यह भी है कि मानों इस ज्ञान का अहसास भी अब समाप्त हो गया है तो फिर बस अब यही हालत लिख रही हूं कि इन एहसासों के परे जो कुछ भी है वह आप स्वयं ही हैं।

मेरे बाबू जी! अब जब इन दोनों दशाओं के परे दृष्टि जाती है तो मैं यही पाती हूं कि अब तो उन्नति की स्टेज यह है कि जहाँ सीमा का कोई बन्धन प्रतीत नहीं होता है। यदि अनन्त कहती हूं तो वहाँ तक दृष्टि नहीं जा पाती है या यों कहूं कि हालत अब दृष्टि की पकड़ से परे पहुंच चुकी है और वेदों के वर्णन से भी वर्णनातीत है। एक आश्चर्य यह भी है कि मेरे श्री बाबू जी के कथनानुसार जहाँ पर वेदों की वाणी का अन्त हो जाता है अर्थात् वेद 'नेति–नेति' अर्थात् इतना ही नहीं, इतना ही नही, कह कर छोड़ देते हैं, वास्तव में सहज–मार्ग साधना का प्रारम्भ वहीं से होता है परन्तु मैंने तो 'नेति–नेति' से परे आपको ही पाया है, इसलिए मैं तो यही कहती हूं कि मैं यह नहीं समझ पा रही हूं कि आप क्या हैं।

इतना ही नहीं यदि मैं यह कहती हूं कि आप सृष्टि में यह हैं या कुल सृष्टि आप ही हैं तो अब यह भी सही हालत इसलिए नहीं लगती है कि 'सृष्टि' शब्द आपसे जोड़ने में स्वयं अर्थहीन हो जाता है। जानते हैं क्यों? क्योंकि इस हालत की प्राप्ति पर कि जहाँ 'सृष्टि' शब्द अर्थहीन हो जाता है अर्थात् नफ़ी या माइनस हो जाता है, इस दिव्य देश की यात्रा में हमें अपने साये में ले चलने वाले स्वयं आप ही होते हैं।

हे मेरे बाबू जी! इस तरह आपने अपनी सहज–मार्ग साधना में क्रमशः हर दशा का एहसास देने के बाद हम अभ्यासियों के लिए खुद अपनी ही प्रतीति हमें प्रदान करने का भान हमसे छीन लिया है। इसका कारण मुझे अब यही समझ में आया है कि आपका दर्शन या आपकी सामीप्यता का एहसास भी कहीं हमें बुत–परस्त अर्थात् मूर्ति–पूजक न बना दे इसलिए जैसे–जैसे आप हमें

आगे, और आगे ले चलते हैं तो क्रमशः अपने साथ होने के एहसास (फीलिंग) से भी हमें दूर रखने लगते हैं। भला कौन जान सकेगा इस दैविक–दशा के दैविक–रहस्य को। आपके अभ्यासियों के समूह को कोई यह न कह सके कि यह बुत–परस्तों अर्थात् व्यक्ति–विशेष के पुजारियों की महफ़िल है बल्कि लोग अपनी हालत में ही लय रह कर ईश्वर–साक्षात्कार के लक्ष्य रूपी नगीना को ही हृदय से अपनाये रहते हैं– भले ही पुनः–पुनः ईश्वर की अनुभूति को देने वाला नगीना हमें आप ही लगते हैं।

हम अभ्यासियों की तो बस एक यही प्रार्थना है कि जिस प्रकार से हमें एवं प्राणिमात्र को जाने में या अनजाने में अपनी पावन प्राणाहुति का प्रवाह हमारे प्राणों में प्रवाहित करके आध्यात्मिक–देश में ले जाने की हमारी तैयारी कर रहे हैं, यह कृपा–धारा हमेशा–हमेशा प्रवाहित रहे और आपकी सामीप्यता का एहसास हमें सदा ही प्राप्त होता रहे। बस इतना ही हम समझ पा रहे हैं।

आपकी बिटिया संध्या यही कहती है कि भले ही हमें ईश्वर के होने की अनुभूति या हृदय में ईश्वर की मौजूदगी की दशा का एहसास भी भूल जाये किन्तु इतना हम बखूबी एहसास पा गये हैं कि हमारे जी (दिल) में जो छुप कर बैठ गया है वह मात्र आप ही हैं।

गीत संख्या–22

ओ बाबू जी! जो तेरे चरणों में आ गए

रचना काल–समर्थ सद्गुरु श्री लाला जी साहब का जन्म–शताब्दी महोत्सव
वसंत–पंचमी, 24–2–73 मद्रास में

ओ बाबू जी! जो तेरे चरणों में आ गए।
अध्यात्म पथ पै जलती वो मशाल पा गये।।

जो कुछ भी हूं वह तेरी, तुम मेरे बन गए,
जो आये तुम जमीं पर, तो प्राण आ गए।।

यू तो यहाँ सभी हैं, सुन्दर सजग मनोहर,
पर आप जो हैं मेरे, उपमान हर गए।।

दुःख–दर्द पीड़ा से हैं, पीड़ित ये सारे प्राणी,
आँचल में सोये तेरी, सुख–छाँव पा गए।।

दुनियाँ न अब है दुनियाँ, ये तब ही मिट चुकी जब,
युग को संवारने को, योगेश आ गए।।

अनुभव तुम्हें न बाँधे, भक्ति तुम्हें न साधे,
लय में तुम्हें समेटे, सब गीत खो गये।।

सौंदर्य अरु आकर्षण, बलिहार हो तुम्हीं पर,
लाला ललाट पर बन, सौभाग्य छा गए।।

फैला है तेरा आँचल, हम हममें न समाये,
सीमा को लाँघ कर तब, तेरे घर को पा गए।।

मंगल-मिलन सरसता, ध्रुव-ध्यान से तुम्हारे,
परमात्मा उतरता, प्राणाहुति को पा गए।।

'संध्या' बसन्ती-धारा, संदेश ला रही है,
वह खुद ही खो गए जो 'बाबू जी' को पा गए।।

नोट- आत्म निवेदन की हालत पूर्ण हो जाने की अनुभूति पर लिखा गया गीत।

व्याख्याः-

ओ बाबू जी! अपनी अनुभूति के सहारे मैं आज डंके की चोट से कहती हूं कि जिन्हें वास्तव में तेरे चरणों की शरण मिल गई है उन अभ्यासियों के आध्यात्मिक-पथ सदैव के लिए मानों सतत् ही जलती हुई शमा से आलोकित हो उठे हैं।

आज मैं जो कुछ भी हूं मात्र आपकी ही बनाई हुई हूं। मुझे लगता है कि मानों मैं आपकी हूं। साथ ही कहीं यह एहसास भी पल रहा है कि आप भी अब मेरे हो गये हैं। इतना ही नहीं अनुभूति यह भी बता रही है कि आपके धरा पर अवतरित होने से प्राणि मात्र के प्राणों में ताज़गी भर गई है क्योंकि आपने हमारी अनुभूति में यह उतार कर हमें दिखला दिया है कि 'ईश्वर सबके हृदयों में मौजूद है।"

वैसे तो विश्व में सभी कुछ सुन्दर है और मन को मोहने वाला व आकर्षक है किन्तु जबसे मेरे जी को आप अच्छे लग गये हैं और आप मेरे हो गये हैं तबसे मुझे ऐसा लगता है कि इस श्रेष्ठ दैविक-दशा को प्राप्त कर चाहे दुनियाँ हो या आध्यात्मिकता हो, जो मेरे जी में समाया है वह अनुपमेय है।

मेरे बाबू जी! आज मैं यह कह सकती-हूं कि आज जो ये सारे प्राणी (सांसारिक-दुखों एवं पीड़ा से पीड़ित) इस महोत्सव में एकत्रित हुये हैं, इन्हें आपके स्नेहांचल कि छाँव मिल गई है अतः यह कितने सुखी एवं आनन्दित लग रहे हैं।

इस महोत्सव में एकत्रित हुए हम सबके हृदय आज परमानन्द में इस तरह से डूब गए हैं कि हमें आज दीन और दुनियां सबकी ही सुधि भूल गई है। वास्तव में मेरे लिए तो यह संसार तब ही मिट गया था जब आपका प्रथम दर्शन मुझे मिला था। इसके पश्चात् मानों संसार का नक्श ही कभी समक्ष में नहीं आया है किन्तु आज जब इस उपरोक्त तथ्य ने आँखे खोलीं तो मैंने यही पाया कि आज इस युग को पुनः इसका दैविक-सौन्दर्य प्रदान करने के लिए मानों युग के ईश की तरह से ही आप सामर्थ्य और शक्ति ले कर पधार रहे हैं।

मेरे बाबू जी! अब तक के अपने साधना–काल में मैंने यही पाया है कि आप दैविक–स्वतंत्रता के बंधन से भी हमें स्वतंत्र रखते हैं क्योंकि किसी भी आध्यात्मिक–गति की अनुभूति में हमारी सजगता एवं लक्ष्य–प्राप्ति की प्यास लय होकर पुनः नव–अनुभूति पाने के लिए तड़प उठती है– उस परमानन्द में खो नहीं जाती है और इससे परे आने पर हमें लगता है कि आप हमारे साथ ही हैं तभी यह लिख सकी हूं कि 'अनुभव तुम्हें न बाँधे, भक्ति तुम्हें न साधे।" यह इस दशा को व्यक्त कर रही है कि 'भक्ति' क्या चीज़ है यह सब भी भूल गया है। यहाँ तक कि गीत गाते हुये और लिखते हुये लगता है कि न तो गाने की धुन सुन पाती हूं, न गीत लिखते समय लिखने के लिए किसी विचार से ही जुड़ पाती हूं, बस न जाने कौन सी धुन की धारा में लय रहते हुये स्वतः ही सब सम्पन्न हो जाता है। गीत के पूर्ण हो जाने पर जब होश आता है तो यही पाती हूं कि 'आत्म–निवेदन की हालत सुहागिन हो चुकी है और अंतर् में सौ+भाग्य बनाने की दैविक–शक्ति मौजूद है। इस प्रकार आपमें ही लय रहते हुए जो कुछ भी मेरी लेखिनी द्वारा लिखा जाता है वह सब मानों एक विस्मृत–अवस्था में स्वतः ही सम्पन्न हो जाता है।

इतना ही नहीं आज मेरी आत्मिक–दशा पुकार कर मुझसे कह रही है कि इस महोत्सव में आपका यह दैविक–सौंदर्य जो अपने चारों ओर अनुभव में आया यह दैविक–प्रकाश एवं इस अनुभव की अनुभूति का ज्ञान भी मानों आप पर ही बलिहार हो गये हैं क्योंकि यह परम दशा आपने ही मुझे प्रदान की है। इतना ही नहीं न जाने क्यों आज बसन्त–पंचमी के इस पावन लाला जी की जन्म–शताब्दी महोत्सव की शोभा आपको ही लेकर है क्योंकि समर्थ सद्गुरु के ललाट पर किसी सुहागिन के ललाट की बिंदिया के सदृश आप ही शोभायमान लगते हैं।

ओ बाबू जी! इस महोत्सव में एक यह भी आश्चर्य मैं पा रही हूं कि आपके फैले हुए स्नेहांचल से यहाँ का वातावरण ऐसा हो गया है कि आज हम सारी सुधि–बुधि खोये ऐसे बैठे हैं कि याद करना चाहते हैं तो भी खुद को हम याद नहीं कर पाते हैं। हमें यही लगता है कि हम सब मानों अपने अहं की सीमा से परे हो गये हैं और मानों कहीं दूसरे लोक में बैठे हैं। कैसा है आपका पावन दिव्य–देश जो आपने हमें रहने के लिए प्रदान किया है।

मेरे बाबू जी! मैंने तो यही पाया है कि हम अभ्यासियों के लिए दिव्य–साक्षात्कार की मगंलमय–घड़ी तभी आती है जब हम सतत् रूप से आपके ध्यान द्वारा लय अवस्था प्राप्त कर लेते हैं। इतना ही नहीं मानों आपकी प्राणाहुति धारा का प्रवाह पा कर हमारा हृदय सतत् रूप से स्वयं परमात्मा के आविर्भाव का हर समय अनुभव करता है।

श्री बाबू जी! आपकी संध्या यही कहती है कि बसन्त–पंचमी की बसंती बयार मानों हम अभ्यासियों के लिए यही वास्तविक संन्देश ला रही है कि यदि तुम्हें श्री बाबू जी महाराज की पावन शरणागति (लय–अवस्था) मिल जाये तो निश्चय ही तुम्हें अहं से सदैव के लिए स्वतंत्रता मिल जायेगी जो स्वयं साधना से प्राप्त कर पाना असम्भव है।

गीत संख्या–23

लोग क्या जाने क्यों।

(रचना काल–फरवरी,1976, शाहजहाँ पुर योगाश्रम का उद्‌घाटन)

लोग क्या जाने क्यों, इस दिल को बुरा कहते हैं,
हम रहें और जहाँ, जिसको ख़ुदा कहते हैं।।
क्या कहें कौन कहे, रस्मये–उल्फ़त की ये बात,
हम तो गुम हो के ही, शुभ नाम हुआ करते हैं।।
फैज़ कुछ इस तरह बरसा, मेरे दिल के अन्दर,
भीगा दामन तो कभी सूखे नहीं, होते हैं।।
मुस्कुरा उठते हैं बाबू जी तो हमने जाना,
दर्दे–दिल है तो मगर, जख़्म नहीं होते हैं।।
लाये हैं मार्ग–सहज, प्राणों की धारा ऐसी,
प्रेम की लौ में तो, खुद ही पिघल जाते हैं।।
राम हैं आप मगर चन्द है ऐसे भी गुलाम,
सामना हो या न हो, फ़ैज रवाँ होते हैं।।
साधना योग को पाये इसी योगाश्रम में,
राज योगी हुए हम, महके सदा फिरते हैं।।
सत्य–अन्तिम को भी प्रत्यक्ष उतारे हम में,
कौन जानेगा कि ये भेद कहाँ पलते हैं।।
सौंप दें दिल 'इन्हें' 'संध्या' फिर वो देखें अहवाल,
हो मुबारक उन्हें जो इसको बुरा कहते हैं।।

व्याख्या:–

मेरे श्री बाबू जी! लोग सदा मन को बुरा कहते हैं परन्तु सहज–मार्ग की दैविक साधना में हृदय को डुबोये रखने में मैंने यही अनुभव किया है कि यदि हम इस दिल को सही दिशा दे देते हैं तो इसके द्वारा ही हम दैविक–सालोक्य अथवा ईश्वरीय–देश में रहने की अवस्था सहज ही प्राप्त कर लेते हैं।

वास्तविक बात तो यही है कि प्रेम की रस्म कुछ विचित्र होती है कि जब हम स्वयं की सुधि को खो देते हैं या अहं के मन से परे हो जाते हैं तभी हमें दैविक संसार में शुभ नाम अर्थात् भक्त का नाम प्राप्त हो जाता है।

मैंने यही पाया है कि मेरे बाबू जी की प्राणाहुति का प्रवाह जबसे हमें हृदय में महसूस होता है तबसे ही हमें ऐसा लगता है कि मानों हमारे हृदय रूपी अन्तर का आँचल सदैव ईश्वरीय–धारा (फ़ैज) से सराबोर ही रहता है क्योंकि दिव्य–रस कभी सूखता नहीं है।

जबसे अपने बाबू जी को मुस्कराते हुये मुखारविंद का दर्शन अपने हृदय में पाया है तबसे मिलन की पीड़ा व दर्द तो अंतर अनुभव करता है किन्तु चोट (संस्कारों की) कहीं नहीं होती है।

मेरे बाबू जी! आपके सहज–मार्ग की विशेषता–प्राणाहुति की धारा के विषय में भला मैं और क्या कह सकती हूं? केवल इतना ही कह सकती हूं कि हमें सतत् ही ऐसी अनुभूति मिलती रहती है कि हमारा हृदय प्रेम की लौ में लय रहता है और अंतर की ख़ुदी स्वतः ही पिघल–पिघल कर साफ हो जाती है।

मेरे बाबू जी। आज अनुभव के बल पर मैं यह कह सकती हूं कि राम जो समस्त में रमा हुआ है, उसे आपका ही विराट्–रूप पा रही हूं। इसका प्रमाण मुझे इस तरह से मिला है कि आपके द्वारा आध्यात्मिक गतियों से सजाये और सवांरे हम अभ्यासियों में इतनी दिव्य–शक्ति (ट्रांसमिशन की) मौजूद है कि यदि अभ्यासी भाई–बहिन हमारे सामने न भी हों तो आपके चन्द गुलामों के हृदय से ही पावन–फ़ैज़ की धारा का प्रवाह उन्हें मिलता रहता है।

मेरे बाबू जी! आपके द्वारा फ़ैज़ से चार्ज हुआ यह योगाश्रम आज अपने नाम की सार्थकता को शुभ नाम देने के लिए आवाज़ दे रहा है कि यहाँ सहज–मार्ग साधना को अपना कर आध्यात्मिक–मार्ग पर अग्रसर होने की इच्छा रखने वाले अभ्यासियों! तुम सबको परमात्मा योग प्रदान कर सकने की क्षमता रखने वाला वातावरण यहाँ मौजूद है। यह सच भी है कि यहाँ राजयोग को धारण करते ही हम आपके कृपा रूपी फ़ैज़ से अपने हृदयों को सदा ही महकता हुआ पाते हैं।

इतना ही नहीं मैंने अपनी अनुभूति में इस सत्य को भी प्रत्यक्ष पाया है कि आपके द्वारा चार्ज हुए यहाँ का प्राणाहुति–प्रवाह अन्तिम–सत्य (भूमा) की गति को भी हममें उतार लाता है लेकिन हमें इस सत्य का ज्ञान नहीं है कि योगाश्रम की चार्जिंग में इतना बड़ा दैविक–रहस्य भी छुपा हुआ है। ज्यों–ज्यों हम साधना में अग्रसर होते जाते हैं हमारा जीवन धन्य हो जाता है।

अंत में अपने अभ्यासी–भाइयों से यही प्रार्थना है कि साधना का परमानन्द तो हमें तभी प्राप्त होता है जब हम अपने मन को सदैव के लिए साध्य के चरणों में अर्पित कर देते हैं और स्वयं के अस्तित्व को विस्मृत कर बैठते हैं तभी हमें यह मन मुबारक हो जाता है और जो इस मन को आज तक दोष देते आये हैं कि यह ध्यान में नहीं लगता है, यह बुरी बातों से भरा हुआ है– उनका यह कथन असत्य हो कर, श्री बाबू जी का यह कथन सिद्ध हो उठता है 'मन सा मीत न कोई' यदि इसे सही दिशा की आर मोड़ दें और इसे साध्य के चरणों में अर्पित कर दें जो आपके इस योगाश्रम में सहज ही हमारे लिए संभव हो जाता है।

गीत संख्या–24

आज हमारे घर आँगन में

(रचना काल–30–4–1970, हैदराबाद–मिशन का रजत–जयन्ती महोत्सव)

आज हमारे घर आँगन में छाई अजब बहार है।
आज हमारे बाबू जी का, जन्म–दिवस त्योहार है।।
आओ हम सब मंगल गायें, हिल–मिल कर सब खुशियाँ मनायें,
सदा हमारे बाबू जी का, हम पर परम दुलार है।।
अपने हृदयों की खुशियों का हीरक–माल इन्हें पहनायें,
वन्दन के पुष्पों सम इनके, चरणों पर बलिहार है।।
'संध्या' युग–युग तक धरती पर, 'सहज–मार्ग' पतवार है,
चिरजीवें बाबू जी हमारे, बच्चों की यह पुकार है।।

व्याख्या:–

हैदराबाद में श्री रामचन्द्र मिशन के रजत–जयन्ती समारोह में क्या समां था, कितना उत्साह था जन–मानस में कि खुद को भूले हुये, परमानन्द में डूबे हुये अभ्यासी भाई–बहिन यह भूल चुके थे कि वे कहाँ से आये हैं और उनका घर–परिवार कहाँ है। मैंने स्वयं में और अन्य लोगों में यही गति पाई कि समस्त के मन उस ओर लगे हुये थे कि यह दैविक–स्तर श्री बाबू जी का कहाँ से उतर रहा है। श्री बाबू जी के भाषण के पश्चात् ही नेत्रों ने उक्त गीत को भाव सहित गाया और अपने नन्हें हाथों से इसका भाव भी व्यक्त किया।

मैंने पहले ही लिखा है कि हम कहाँ हैं–हम सभी को यह विस्मृत ही हो गया अतः विशाल पंडाल ही हमें अपना घर और स्टेज ही घर का आँगन प्रतीत हो रही थी। बच्चे झूम–झूम कर भाव–नृत्य कर रहे थे कि आज इस शुभ अवसर पर अपने मिशन की रजत–जयन्ती के अतिरिक्त अपने श्री बाबू जी महाराज के पावन जन्मोत्सव में एकत्रित हुये हैं। यहाँ के वातावरण में एक अजब बहार छाई हुई है और हम सबको यही लग रहा है कि आज हमारा कोई बड़ा त्यौहार है।

बच्चे कहते हैं कि हम और अधिक तो कुछ समझते नहीं हैं बस मन में यही उमंग है कि हम सब मिल कर मंगल–गान गायें और आपस में मिल कर खूब खुशियाँ मनायें क्योंकि हम बच्चों पर हमारे बाबू जी का सदा से ही बहुत प्यार और दुलार बरस रहा है।

बच्चे पुनः कह रहे हैं कि मिशन की रजत–जयन्ती के इस शुभ् अवसर पर हम सब अपने हृदय की खुशियों से संजोया मंगल–गान रूपी हीरक–माल इनके गले में पहना रहे हैं अर्थात् अपने हृदय की खुशियों को इनके चरणों में अर्पण कर रहे हैं। इस माल्य–अर्पण के बाद पुष्पों के बजाय हम स्वयं ही इनके पावन–चरणों पर बलिहार हो रहे हैं।

संध्या कहती हैं कि आज इन बच्चों का हौसला तो देखिये कि अपने नन्हें हाथ उठा कर कैसे दावे से कह रहे हैं कि आध्यात्मिक–पथ पर चलने वाले लोगों के लिए युगों–युगों तक यह सहज–मार्ग की पतवार का सहारा ले कर ही इस भव सागर को पार कर लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। बच्चे पुनः मस्ती में झूम–झूम कर यह गा रहे हैं कि आज के इस शुभ महोत्सव में हम बच्चों की यह हार्दिक पुकार है कि हमारे प्यारे बाबू जी सदैव चिरायु रहें, चिरायु रहें।"

गीत संख्या–25

बाबू तुम्हारा जन्म–दिन मिल कर मनायें हम

रचना कालः– श्री पार्थसारथी जी के मिशन के प्रेसीडेन्ट होने की घोषणा के उपरान्त लखनऊ में बसन्तपंचमी उत्सव पर, दिनाँक– 21–1–1985 को।

बाबू तुम्हारा जन्म दिन मिलकर मनायें हम।
तुम प्राण हो हमारे, जियें रह के तुम में हम।।

हर श्वाँस आ रही, तुम्हारी श्वाँस को लिए,
हर दिल यह जानता है, हम उसी के हो लिए,
दिन जन्म का हर दिन हो, मुबारक तेरे चरण।।

हर आँख डबडबाई, तुम हो इनमें समाये,
हर लब पै है पुकार, तुम क़रीब आ गए,
फिर भी दरश की प्यास को, कैसे बुझायें हम।।

लाला को थी ये फ़िक्र, शक्ति को उतार लाएं,
बीते युगों की आस, ज़माना सुधार लाएं,
तेरे करम का साया, सदा पाते रहें हम।।

भौंचक हुआ अनन्त, क्षोभ कैसे ये हुआ,
धरती पै उतरा कौन, उनकी शक्ति ले गया,
तब ज़िक्र हुआ 'बाबू' का, बलिहार हुए हम।।

जलती है 'सहज–मार्ग' शमा क्या है दे गई,
ये होश किसे शम्मा जल रही या बुझ गई,
तुम आन विराजे हो, समर्पण हुए हैं हम।।

पच्चासी वर्ष धरती ने चूमे तेरे चरण,
आसमाँ ने ली बलाएं, कौन जाने ये मरम,
लाए हैं पवन–प्यार उनका, पी रहे हैं हम।।

जी से हमें सजाया–सवाँरा है आपने,

प्राणों की आहुति से, हमें पाला आपने,
अब दूर अंधेरा है, प्रात हो गए हैं हम।।

सौभाग्य दिया तुमने है लखनऊ से शहर को,
नव–आब आज लाया है, धारा को मोड़ के,
काँधे पै पाया हस्त–वरद, मिट गए हैं हम।।

छोड़ा है पार्थसारथी, फूले–फले मिशन,
हर फूल खुशबूदार हो, महक उठे चमन,
मुस्काये प्यार 'उनका' ये, खुशियाँ मनाये हम।।

सदियों से लगी आँख थी, कब आयेंगे 'बाबू',
मन डूबे हुये ध्यान में शक्ल 'उन्हीं'की,
'संध्या' तुम्हें जो पाया लक्ष्य पा गए थे हम।।

व्याख्या:–

ओ बाबू जी महाराज! आपकी संध्या (कस्तूरी) को, आज के बसन्त पंचमी समारोह के प्रथम शुभ–अवसर पर जो आपके प्रतिनिधि, भाई श्री पी. राजगोपालाचारी (मद्रास) की अध्यक्षता में यहाँ मनाया जा रहा है-- मेरी यही प्रार्थना है कि आपके पावन जन्मदिन पर इसी प्रकार एकत्रित हो कर हम इसे सदैव ही मनाते रहें क्योंकि मुझे आज लग रहा हैकि आप हम अभ्यासियों के मन एवं प्राणों में कुछ इस प्रकार से समाये हुए हैं जैसे हम सब आप में ही रहकर जी रहे हैं।

हमें ऐसी प्रतीति हो रही है कि हमारी हर स्वाँस में आपकी ही स्वाँस आ रही है एवं हम अभ्यासी मात्र इतना ही जानते हैं कि हमारे हृदय आपके समर्पित हो चुके हैं। कदाचित् इसी से हमारी अनुभूति का परमानन्द हमें बतला रहा है कि मानों हर दिन ही हमारे लिए आपके जन्मोत्सव के समान परमानन्द लेकर आता है। मेरे बाबू जी, मैं तो बस यही कह सकती हूं कि इस धरा पर आपके पावन–चरणों का अवतरण हम सबको सदा–सदा मुबारक हो।

मेरे बाबू जी! मै कैसे कहूं कि आनन्द अश्रुओं से डबडबाई हमारी आँखें मानों हमें जता रही हैं कि आप इनमें समाये हुये हैं और हमारे होंठ हमें यह बतला रहे हैं कि आप हमारे कितने करीब बैठे हुए हैं अर्थात् हमारे कितने अपने हो गये हैं। फिर भी आपके वास्तविक दिव्य–दर्शनों की प्यास जी (मन) को चैन नही लेने देती है।

हम सब तो आज अपने दादा जी, समर्थ श्री लाला जी की बलायें लेते हैं कि जिन्हें यह फ़िक्र हुई कि युग–परिवर्तन के हेतु वे भूमा की शक्ति अर्थात् आदि–शक्ति को ही धरा पर उतार लायें क्योंकि युग की इस आशा को पूर्ण करने की सामर्थ्य कि अब ज़माने को सुधारने के लिए ऐसी शक्ति पर स्वामित्व पाये हुये युग–पुरुष की आवश्यकता प्रकृति (नेचर) की थी। आज आपसे हमारी यही प्रार्थना है कि आपकी इस महत्–कृपा के साये में अर्थात् श्री बाबू जी की कृपा में हम सदैव डूबे रहें।

हे समर्थ सद्‌गुरु श्री लाला जी साहब! आपके इस अद्‌भुत करम से स्वयं अनन्त (आदि–शक्ति) भी आश्चर्य चकित रह गई होगी कि एक क्षोभ उसमें स्वतः रचना के समय हुआ था, लेकिन उसमें यह दूसरा क्षोभ पैदा करके कौन दिलेवर (शक्तिशाली) धरती का लाल 'उसकी' परम–शक्ति को धरती पर उतार कर ले गया है? वह परम विभूति कौन है? यह बात उठते ही मानों हमारे दिल परमानन्द से झूम उठे क्योंकि यहाँ नाम हमारे बाबू जी का आ रहा था कि ये ही वह परम विभूति हैं।

संध्या कहती है कि आपकी ज्योति से ज्योतिर्मय यह सहज–मार्ग साधना रूपी शम्मा ने हमें कैसी दिव्य–आध्यात्मिक दशायें प्रदान की हैं कि हमें यह ज्ञान तक भूल गया है कि हम किसी सहज–मार्ग पथ के पथिक हैं। जानते है ऐसा क्यों है? क्योंकि हमारे हृदय में, हमारी दृष्टि में तो स्वयं आप ही समा गये हैं कि जिन्होंने सहज मार्ग को उतारा है। अर्थात् इस शम्मा को ज्योतिर्मय करने वाला ही हमारा हो गया है।

मेरे बाबू जी ! यह धरती कितनी बड़भागी है कि इसे पच्चासी वर्ष का दीर्घ काल आपके पावन चरणों का स्पर्श मिलता रहा और आसमान! यह तो सदैव आपकी बलायें ही लेता रहा क्योंकि उसे भी यह एहसास था कि उसे भी किसी की श्रेष्ठ पावन छाँव मिल रही है किन्तु इस भेद को आप ही हमारे समक्ष स्पष्ट कर पाने में समर्थ हैं। इतना ही नहीं आज भी आपके प्यार की बयार (पवन) मानों हम पी रहे हैं। आज यही हमारा जीवन है।

मेरे बाबू जी ! मैं केवल इतना ही कह सकती हूं कि हमें अपने जी में छुपाकर ही आपने हमें आध्यात्मिक-गतियों से सजाया है। आपने हमारे वाह्य-व्यवहार को भी आध्यात्मिकता का निखार दे कर संवारा है। अपने दिव्य प्राणों से प्राणाहुति प्रदान करके ही हमारा लालन-पालन किया है अतः आज इतना ही नहीं कि हमारे मन का भौतिक–अंधियारा ही दूर हुआ है बल्कि हमें यह लगता है कि मानों हम स्वयं उज्ज्वल दिव्य–प्रातःकाल के रूप में संवर कर खड़े हो गये हैं और दूसरों को भी आध्यात्मिक–प्रकाश देने में समर्थ हैं यह आपकी ही परम कृपा का फल हैं।

इतना ही नहीं आपने ही आज लखनऊ शहर को यह सौभाग्य प्रदान किया है कि आपके प्रतिनिधि रूप में पधारे भाई पार्थसारथी जी के शुभागमन का उत्सव यहाँ मनाया जा रहा है। आपकी कृपा का क्या कहना है कि आज ईश्वरीय–धारा के रूप में नव–आब (जल) अर्थात् दैविक–जल की वर्षा से इसे (लखनऊ को) पावन बना दिया है। इतना ही नहीं अपने कंधों पर आपके प्यार की थपथपाहट पा कर मानों सच में ही हम मर मिटे हैं क्योंकि हमें इसके अतरिक्त आज कुछ भी दिखाई नही दे रहा है।

आपने अपने मिशन के लिए श्री पार्थ सारथी जी को प्रतिनधि रूप में नियुक्त किया है जिससे यह मिशन सदैव फूलता–फलता रहे। आपके द्वारा लगाये हमारे मिशन रूपी बाग़ के हर पुष्प अर्थात् हर अभ्यासी से आध्यात्मिकता की ऐसी महक उठे कि हमारा मिशन सदैव आध्यात्मिक–बयार से महकता रहे। इसके द्वारा ही आपके प्यार की पार्थसारथी रूपी मुस्कान सदैव खिली रहे और हम अभ्यासी सदैव आपकी मुस्कान का जश्न मनाते रहें।

आपकी संध्या की आँखें मानों सदियों से इसी प्रतीक्षा में थीं कि कब मेरे बाबू जी का अवतरण धरती पर हो। आज समस्त की दशा देख कर मुझे ऐसा लग रहा है कि मानव–मात्र के मन ईश्वरीय–धारा में डूबे हुये हैं और ध्यान में एक दैविक विराट् स्वरूप ही समाया हुआ है। और संध्या–उसने तो जिस दिन आपका प्रथम दर्शन पाया था, उसी दिन इसे लगा था कि मानों इसे (संध्या को) इसका परम–लक्ष्य प्राप्त हो गया है।

गीत संख्या–26

याद में भर आये तुम

याद में भर आये तुम, जीवन सहारा मिल गया।
ध्यान में डूबे थे हम, आँखों का तारा मिल गया।।
हम समाये थे उन्हीं में, अरु समा कर रह गए,
मुस्कुराया मन सरोवर, वह कमल बन खिल गए,
बूंद में जब सिन्धु दरशाया तो क्या–क्या मिल गया।।

छवि वो कैसी थी कि हमने होश खोया किस क़दर,
सामने बैठे थे बाबू, किन्तु सब भूली नज़र,
तुमने देखा मुस्कुरा जब, आवरण वह हट गया।।

मोहिनी डाली थी ऐसी, ठग गये उस भोलेपन पै,
सादगी ने जो निहारा तो लगा क्या वारें तुम पर,
सहज ही साया तेरे, आँचल का हमको मिल गया।।

दिव्यता भी हार जाती थी जभी देखें तेरा मुख,
शलभ भी झूठे लगे मर कर जिये–हैं फिर भला कब,
हम तो मर कर जीते हैं, जो जीत बन तू मिल गया।।

हो तभी अखलाक पूरा, खाक हो जाये अहम्,
ध्यान खोया मान खोया, फिर कभी लौटे न हम,
समझे तब गौहर सहज–मारग का हमको मिल गया।।

तड़प को देखा तड़पता, प्यास खुद को पी गई,
हर तरफ़ पाया तुम्हें, यह बात थी कैसी नई,
तुममें तुमको देखने का, आईना था मिल गया।।

तुमने बदली है फिजां, अब आत्मबल होगा प्रबल,
ज्योति बनकर जगमगाये, अब धरा अरु ये गगन,

अनगिनत प्राणों का प्यारा, जग से न्यारा मिल गया।।

लक्ष्य–व्रतधारी बने हम, सजग प्रहरी साथ में है,
हैं मिले सद्‌गुरु ये ऐसे, हाथ थामें हाथ में हैं,
'संध्या' अब कैसे कहें, हमको किनारा मिल गया।।

व्याख्या :-

मेरे इस गीत में उस प्रिय दशा की अनुभूति का पूर्ण विवरण है जबकि याद केवल मालिक की ही याद से भरी रहती है। उस समय यदि मैं कुछ भी याद करना चाहती थी या अपने स्वजनों को भी याद में लाना चहती थी तो बहुत कोशिश के बाद भी मानों मैं विफल हो जाती थी और याद में मात्र उनका ही दर्शन मिलता था। यह आवश्यक भी था उस समय क्योंकि मेरे जीवन को रख पाने का मात्र सहारा ही यही था। ध्यान का हाल यह था कि आप ध्यान को किधर भी मोड़ना चाहें वह मानों 'उनमें' ही लय हो गया था और आँखें ? इनके समक्ष तो उनके अतिरिक्त कुछ था ही नहीं, क्यों ? इन नयन–पुतलियों में तो मेरे जीवन–सर्वस्व की ही दिव्य छवि समाई हुई थी।

हाल यह था कि मुझे लगता था कि मैं उनमें लय थी किन्तु तब लय होकर उनके दिव्य–विराट् में विलीन हो गई थी। हर समय मुझे ऐसा ही प्रतीत होता था कि मानों मेरे विराट्–मन के सरोवर में उनकी प्रत्यक्षता ही भर गई थी। विराट् मन को विराट् आनन्द ही मिल रहा था, तभी मेरे बाबू जी ने मेरे पत्र के उत्तर में लिखा था कि 'मुझे खुशी है कि बूंद ने सागर का पता पा लिया है' फिर मैं क्या लिखूँ कि मैंने क्या पा लिया था।

उस विराट् दिव्य–विभूति की छवि कैसी थी कि मानों सारी सुधि–बुधि स्वयं को ही विस्मृत कर बैठी थी। मुझे उस समय स्वयं ही आश्चर्य ने अपने आँचल में छुपा लिया जब मैं उनके समक्ष कुर्सी पर बैठ कर भी पुनःपुनः प्रयास कर रही थी कि अपने समक्ष बैठे बाबू जी को मैं निहार लूं किन्तु दृष्टि न जाने कहाँ जाकर मुझे भूल बैठी थी। मुझे लगा कि जब बाबू जी को लगा कि उनकी बिटिया परेशान है, बार–बार आँखें मल कर उन्हें देखने का प्रयास कर रही है तभी मैंने देखा कि उनकी मुस्कुराहट की एक कौंध ने मेरी इस दशा को खींच कर स्वयं को मेरी दृष्टि के समक्ष प्रत्यक्ष कर दिया था और मैं? मानों खुशी से झूम उठी थी।

तभी मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि सामने दिखाई देने वाले इनके इस भोलेपन में कुछ ऐसी मोहिनी (खिंचाव) है जो मेरे अभ्यासी–मन को हर ले गई है सालोक्यता की परम दशा में और इनमें समक्ष दिखाई देने वाली सादगी की अलौकिकता भरी दृष्टि ने मानों मेरा सब कुछ चुरा लिया था क्योंकि फिर मेरे पास इन पर न्योछावर करने को कुछ रह ही नहीं गया था तभी अचानक मुझे ऐसी अनुभूति हुई कि अब साँचे समर्पण की दशा मालिक ने मुझे बख्श दी है।

इस अनुभूति के पश्चात् ही मुझे लगा कि अब मेरे बाबू जी के मुखारविन्द को देखकर दिव्यता की उपमा भी फीकी पड़ गई है। ऐसी दिव्य–छवि को निहार कर शम्मा पर मर मिटने

वाले शलभ का प्यार मुझे इसलिए झूठा लगने लगा था क्योंकि वे तो आनन्द को सहन न कर पाने पर मर जाते हैं लेकिन मैं तो भौतिक–मरण की अवस्था के परे मानों उनके ही लोक में और उनमें ही लय होकर नव–दिव्य–जीवन में जी उठी थी। इस पंक्ति का दूसरा अर्थ यह भी है कि बाबू जी ! मैं तो मर कर भी बाजी जीत गई थी क्योंकि 'मेरी जीत तो आप हैं जो मुझे मिल गए हैं।'

उस परम–दशा में पैरने पर मुझे पता लगा कि जिन अखलाक पर मेरे बाबू जी ज़ोर देते हैं और समर्थ सद्गुरु हम अभ्यासियों से जिसकी आश रखते हैं उस वास्तविक अखलाक़ की हालत अहं का भस्म हो जाना ही है। इस अहम् अवस्था की प्राप्ति के बाद ही श्री बाबू जी ने मुझे बताया कि अब तुम्हें ध्यान करने की कोई आवश्यकता नहीं है और सूक्ष्म अहं से भी अब तुम छुटकारा पा गई हो। सूक्ष्म–अहं का हवाला देते हुए उन्होंने बताया कि अपमान को सहन करना तो सरल है किन्तु कोई मान दे और अन्तर उस समय खुशी की फीलिंग (एहसास) से स्वतंत्र रहे यह प्रयत्न कठिन है। उसी दिन मुझे सहज–मार्ग साधना की ऐसी दैविक–विशेष–महत्ता का पता लग पाया।

इतना ही नहीं जब घर चली आई तो ऐसी दशा मेरे सामने थी कि मानों मिलन के लिए तड़प की अवस्था की तड़पन तो कहीं है किन्तु मैं इस अवस्था के स्पर्श से परे थी। ईश–साक्षात्कार की प्यास मानों खुद प्यास में ही समाकर लय हो गई थी। इस अवस्था की प्राप्ति पर मैंने पाया कि समस्त में, आपकी ही शक्ति समाई हुई है। मानों ईश्वर की सर्वशक्तिमान छवि मेरे समक्ष प्रत्यक्ष फैली हुई थी और मैं अपने बाबू जी में लय हुई इस ईश्वरीय सर्व–शक्तिमान–गति का साक्षात्कार प्राप्त कर रही थी। वास्तव में मेरे लिए यह कैसी अलौकिक बात थी। वास्तव में मैंने यह पाया कि उनमें लय–अवस्था का दर्पण ही हमें ईश्वरीय–साक्षात्कार अर्थात् ईश्वर के सर्व–शक्तिमान रूप का साक्षात्कार दे पाने का समर्थ साधन है।

मेरे बाबू जी! अब यह नज्ज़ारा प्रत्यक्ष में आ रहा है कि आपने सम्पूर्ण वातावरण को बदलना शुरू कर दिया है। इसका प्रथम परिणाम तो हमें यह मिलेगा कि मानव–मात्र में क्रमशः आत्मबल बढ़ेगा। फिर दिव्य–प्रकाश से धरा से लेकर आकाश तक जगमगा उठेगा। फिर देखते ही देखते यह दिव्य–विभूति अनन्त–प्राणों की प्यारी हो जायेगी क्योंकि यह दैविक–छवि जगत से न्यारी है।

मेरे अभ्यासी भाई–बहिनों! अब हमारी बारी है कि हम ईश्वर–प्राप्ति का लक्ष्य लेकर मन में ठान लें कि हमें अपना लक्ष्य ज़रूर प्राप्त होगा क्योंकि हमें लक्ष्य प्राप्त कर पाने की क्षमता प्रदान करने वाले एवं अपने इस दैविक–कार्य के लिए सदैव सजग प्रहरी के सदृश रहने वाले बाबू जी हमारे साथ हैं। इतना ही नहीं बजाय इसके कि हम इनका हाथ थामें रहें, यह समय सद्गुरु खुद हम अभ्यासियों का हाथ थामे हुये लक्ष्य में मिला देने के लिए तैयार हैं, इसीलिए आज मुझे (संध्या को) ऐसा लग रहा है कि मानों वास्तव में हमने अपना किनारा पा लिया है। बस इस तथ्य को उजागर करने एवं इस परम–दशा की अनुभूति को व्यक्त कर पाने के लिए अभी मुझे

शब्द नहीं मिल रहे हैं किन्तु यह तो दृढ़ विश्वास मुझे है ही कि आगे अवश्य व्यक्त कर सकूंगी।

गीत संख्या–27

तू मेरा आज कहूं मैं कैसे

रचना काल : लखीमपुर में 30.4.1985 को निर्मित

तू मेरा आज कहूं मैं कैसे, यह भी एक राज़ कहूं मैं कैसे।।
प्राणों के तार सजे हैं ऐसे, गायें वह राग सुनूं मैं कैसे,
उठे आवाज़ सहूं मैं कैसे, प्रिय का आगाज़ रहूं मैं कैसे।।
ओढ़ी चूनर है आज बेरंगी, सादगी ने संवारी माँग मेरी,
शब्द अनहद की है शहनाई बजी, छोड़ घर आज अहं का मैं चली।।
डोली आई है बिन कहारों की, हुई खामोशी है बहारों की,
विदा देने को आये तीनों गुन, रोये माया कि परे यह है चली।।
खो के मालिक में ये पाया मैंने, घट–घट वासी है वह, देखा मैंने,
शक्ति सबमें उन्हीं की है फैली, सर्वव्यापी के साथ मैं हो ली।।
उर में मालिक ने लिया जब अपने, अचरज देखा औ ये पाया मैंने,
आना मुश्किल था सीमा में उनको, मिला असीम में देखा मुझको।।
मिला न चैन तो बेचैन चली, मिला सुकून ना बेशक ही चली,
मंजिल आसान थी मुश्किल न चली, सहज–मारग की झलक पाई भली।।
होके आज़ाद सब ये मिल गाओ, रहो चिरआयु सबको ले जाओ,
ध्यान अपने से सबको पहुंचाओ, 'संध्या' तुझ बिन पड़े न कल; आओ।।

व्याख्या :-

श्री बाबू जी महाराज के पावन जन्मोत्सव 30 अप्रैल का पावन दिन था। लखीमपुर खीरी–केन्द्र पर भाई नसीब चन्द जी के क्वार्टर के सामने बड़े मैदान में पंडाल लगाया गया था। उस दिन अजीब समां था और समां भी क्या करे युग–प्रवर्तक श्री बाबू जी महाराज का पावन जन्मोत्सव पर्व था। श्री बाबूजी महाराज सशरीर तो नहीं पधारे थे किन्तु उनकी मौजूदगी का एहसास ऐसा था कि सभी अभ्यासी–गण चौंक–चौंक पड़ते थे कि अरे श्री बाबू जी तो यहाँ प्रत्यक्ष मौजूद हैं। कदाचित् मेरी हालत जो उस पावन दिन पर उन्होंने मुझे बख्शी थी, ईश्वर के विराट् स्वरूप का दर्शन कराना था। अकेले दर्शन पाती तो शायद भ्रमित हो जाती कि यह मेरे बाबू जी महाराज का विराट्–दर्शन है जो मेरे समक्ष फैला है। मुझे यह भी लग रहा था कि मेरी आँखें जो उनके दर्श में डूब चुकी हैं, उन्हें ही निहारतीं किन्तु साँचे सद्‌गुरु श्री बाबू जी तो हमें

ईश्वर का साक्षात्कार प्रदान करने आये हैं इसीलिए मेरे समक्ष में आज दर्शन के पावन-पर्व का समां फैला हुआ है। संयोग देखिये कि उस दिन का यह गीत दर्शन के परमानन्द में लय होकर ही आया था। मैं गा रही थी विभोर होकर और सुनने वाले सुन रहे थे सुध-बुध खो कर। गीत के स्वरों और शब्दों में भरे थे एक लड़की के विवाह के उपमान कि वह कैसा अनुभव करती है उस समय। श्री बाबू जी की बिटिया कहती है- कि आप मुझे लेने आये हैं। हृदय इस परमानन्द में डूबा हुआ है किन्तु कुछ लिहाज़ भी है। साक्षात्कार की तैयारी तो है लेकिन अभी साक्षात्कार हुआ नहीं है इसलिए 'आप मेरे हैं' कह पाने में जिह्वा मौन है; यद्यपि इस दशा की अनुभूति पाकर मन इस रहस्य को जान गया है।

संध्या कहती है कि आज इस बेला पर जबकि आप द्वार पर आये हुये हैं मैं एक दैविक-संगीत का वह राग सुन रही हूं जो दर्शन को बखानता है। यद्यपि यह अवश्य है कि इस संगीत को सुनने के बजाय मेरा मन बार-बार पर्दे में खड़े आपके चरणों में ही जा पहुंचता है। दिल तो बार-बार कहता है कि दौड़ चल बाहर और पा ले प्रिय का दर्शन किन्तु स्वतः ही एक लिहाज़ है जो मुझे रोके हुये है।

श्रृंगार के लिए तो जो साज मालिक ने मेरे लिए भेजा था (दर्शन की दशा की ज़रूरत का) वह तो मुझे मानों प्रकृति ने ही पहना दिया है। जो सामान मुझे पहनाया गया है उसमें मुख्य है चूनर अर्थात् ओढ़नी जिसमें कोई रंग ही नहीं है और सादगी की हालत ऐसी है मानों मेरी माँग का श्रृंगार ही यह है। सहज-संयोग तो देखिये कि स्वतः ही अनहद के स्वर रूपी शहनाई अर्थात् ओंकार के स्वर समवेत रूप में मेरे कण-कण से मुखरित हो उठे हैं जिन्हें मैं स्पष्ट सुन रही हूं, जिसने यह स्पष्ट कर दिया है कि आज मैं भौतिक शरीर रूपी घर अर्थात् इसमें (शरीर में) होने के अहं के एहसास को त्याग कर पिया के देश जा रही हूं।

आश्चर्य तो तब हुआ जब चौखट के बाहर निकली तो पाया कि डोली तो भेजी गई है किन्तु इसे उठाने वाले कहार कहीं नहीं थे। एक बार आनन्द की बहार भूल कर मानों खामोश खड़ी रह गयी किन्तु जैसी डोली थी कहार भी तो वैसे ही होने चाहिए थे अर्थात् डोली उठाने वाला था उनका प्यार। अब डोली तो चल दी किन्तु परम्परा के अनुसार द्वार तक भाई पहुंचाने आते हैं सो यहाँ तो केवल तीन गुण अर्थात् सत्, रज और तम् ही इस विलक्षण डोली को विदा देने आये थे। बेटी की माँ बेटी की बिदाई के समय विचलित हो उठती है सो यहाँ यह पार्ट माया ने निभाया था अर्थात् मालिक मुझे माया के पार ले चले थे।

डोली चल रही थी और विस्मृत-अवस्था में बैठी मैं मानों यह दशा निहार रही थी कि उनके प्यार की डोली में बैठते ही अर्थात् लय-अवस्था प्राप्त करते ही मुझे लगा कि **घट-घट (पहली ड्योढ़ी) में मौजूद** मेरे मालिक मेरे साथ में हैं। डोली बढ़ने के साथ ही गीत गाने की गति भी लय-अवस्था में अग्रसर होती जा रही थी। मैंने स्पष्ट पाया कि प्रिय की ड्योढ़ी तक पहुंचने में अब मैं दूसरी ड्योढ़ी अर्थात् दर्शन की दूसरी गति अर्थात **सर्वशक्तिमान की हालत** का साक्षात्कार पा रही थी। मैंने यह भी पाया कि इस अलौकिक गीत की अनोखी लय के साथ सभी अभ्यासियों के मन भी हर गति का स्पर्श पा रहे थे। अचानक प्रिय की तीसरी चौखट

को चूम कर डोली ने जब अन्दर प्रवेश किया तो मुझे लगा कि अरे **सर्व–व्यापी** तो यही दिव्य–विभूति है जिनके प्यार की कशिश मुझे यहाँ इनके ही चरणों में खींच कर ले आई है। फिर क्या था– अब समक्ष में न तो ड्योढ़ी थी, न प्यार की डोली थी। एक ऐसा दिव्य चमत्कार मैंने पाया कि डोली में बैठी मैं मानों उनके प्यार में विलीन हो चुकी थी। अब तो जिनका प्यार अवशेष था उनमें ही विलय हो गया था। साथ ही मुझे लग रहा था मानों उनके प्यार के समान ही वे मुझे अपने ही विराट्–हृदय का स्पर्श देकर अपनी दिव्य–असलियत में प्रवेश देते जा रहे हैं किन्तु मैं अवाक् खड़ी रह गई कि जब मैंने पाया कि उनका खुद से खुद बाहर आना तो असंभव था, भला ईश्वर स्वयं ही की सीमा से बाहर कैसे हो सकता था अतः उस परम–शक्ति ने कृपा करके मुझे अपने असीम में समेट कर हमेशा के लिए अपना लिया था। मानों मामला ही उलट चुका था। बजाय इसके कि मैं उनका दर्शन करती, वे स्वयं ही मुझे अपने हृदय में समेट कर मुझे निहार रहे थे।

प्रिय भाइयों! यहाँ तक पहुंचने की चलन का मैंने केवल एक ही भेद पाया है कि जबसे साक्षात्कार का लक्ष्य पाने को अधीर जी ने ठान लिया था तब से मन का चैन चला गया किन्तु मैं बेचैन ही चलती चली आई। एक क्षण को भी मैंने मन की शांति नहीं पाई। तड़प ने मुझे शान्ति नहीं लेने दी तो भी मैं बिना इस सन्देह के कि जाने मुझे मिलेगा या नहीं, बराबर बढ़ती ही चली गई। मुझे कभी अपनी अनुभूति पर शक और भ्रम नहीं हुआ इसलिए मुझे हमेशा यही लगा कि मुझे मेरी मंजिल अवश्य मिलेगी और इसलिए मुझे सदा दृढ़ विश्वास रहा है कि सहज–मार्ग साधना ही ईश्वर–प्राप्ति का एकमात्र साधन है। लक्ष्य को सदैव ध्यान में रक्खो और साथ में अपने बाबू जी महाराज की पावन–प्राणाहुति का धारा–प्रवाह एवं उनकी पालन करने वाली निगाह की निगरानी–फिर लक्ष्य पाने में भला हमें देरी क्यों हो। यही झलक है हमारे सहज–मार्ग की सहजता की।

अब आप सबसे मेरी यही प्रार्थना है एवं मेरे हृदय का प्यार यही आवाज़ दे रहा है कि अब तो परम–विभूति हम सबके लिए यह मुक्ति अर्थात् स्वतंत्रता भरा संदेश दे रही है कि हम सब मिलकर आज़ाद होकर इनका दैविक गुणानुवाद गायें और समर्थ सद्‌गुरु से इनके चिरायु होने की दुआ माँगें और कहें कि हम सब आपका वरद–हस्त पकड़ कर आध्यात्मिकता के उन्नत शिखर तक चलने को तैयार हैं। हमें आप अपने साथ में ले चलें। इतना ही नहीं संध्या कहती है कि लक्ष्य–प्राप्ति के लिए हम सदैव आपको ध्यान में रक्खे हैं और हमारी दर्शन की प्यास अब हमें चैन से बैठने नहीं दे रही है। अतः अपने इस कथन को कि 'तड़प अपना रास्ता खुद टटोल लेती है', हमारे लिए, हमारे समक्ष उपलब्ध कर दें।

कितनी दूर रहे मंजिल से

कितनी दूर रहे मंज़िल, पर चलते–चलते मिल जाती है।
कितनी राह अजानी हो, पर चलते–चलते चल जाती है।।
कितनी बार निराशा रोई, कितनी बार जगी आशा में,
कितनी पीड़ा व्यापी मन पर, पलते–पलते पल जाती है।।
कौन कहे भोली भावुकता, प्यार कभी बन जाती है,
खोजी मन की खाली झोली, भरते–भरते भर जाती है।।
कैसी आतुरता है आना, विस्मृत है प्रिय का दर्शन में,
कौन खड़ा सम्मुख ये किसके, पर शनैः शनैः लय हो जाती है।।
कितनी बार अमर होता है मरण, और जीवन रोता है,
अणु–अणु में छवि प्रगट तुम्हारी, मिलते–मिलते मिल जाती है।।
धन्य–धन्य सृष्टि का वह क्षण, बाबूजी! अवतरण तुम्हारा,
बलिहारी 'संध्या' तव मुख छवि, नयनों में भर–भर आती है।।

उक्त गीत की प्रथम पंक्ति किसी अन्य कवि महोदय की है। मैं उनको प्रणाम करती हूं और क्षमा माँगती हूं कि मैंने उनके गीत की पंक्ति लेकर सम्पूर्ण गीत की रचना की है और उसमें आध्यात्मिक–दशाओं का वर्णन किया है। आज इस गीत की व्याख्या के समय मेरा मस्तक उन कवि–महोदय के प्रति श्रद्धा से नत है।

आज मेरी अनुभूति यही बताती है कि आध्यात्मिकता की अनन्त–यात्रा की मंज़िल पहले हमें कितनी ही दूर क्यों न प्रतीत हो किन्तु धीरे–धीरे इस पथ पर अग्रसर हो जाने पर वह अवश्य मिल ही जाती है। रास्ता कितना ही अनजान क्यों न हो पर यदि हम उस पर चलना शुरू कर दें तो जहाँ तक वह राह जाती है वहाँ तक तो हम पहुंच ही जायेंगे। इसी तरह आध्यात्मिकता की राह यद्यपि अनजानी है पर यदि हम लक्ष्य को पाने के लिए उस पर चलना आरम्भ कर देंगे तो अन्ततः लक्ष्य को पा ही लेंगे।

यद्यपि यह अवश्य है कि अभी हमें लगता है कि लक्ष्य (ईश्वर–प्राप्ति) हमसे दूर है अर्थात् साक्षात्कार की सामीप्यता हमें महसूस नहीं हो पाती है तो हम निराश से होकर रो–रो कर प्रार्थना करने लगते हैं। फलस्वरूप हमारे अंतर में मानों पुनः आशा का जन्म हो जाता है और हम आनन्द से पुलक उठते हैं। हम अनन्त आध्यात्मिक–अनुभूतियों के साथ ही परम–पथ पर अग्रसर होते जाते हैं। इसमें बहुधा ऐसा प्रतीत होता है कि शीघ्र साक्षात्कार पाने की पीड़ा मानों मन से ऊपर

निकल जाना चाहती है किन्तु मन इस सौभाग्य को स्वयं में ही समेट लेता है और पीड़ा भी मन की थपकी पाकर मानों पालतू बन जाती है।

आध्यात्मिक–पथ में मैंने एक बात यह अनोखी पाई है कि इसमें भावुकता का मात्र भोलापन कामयाब नहीं हो पाता है क्योंकि भावुकता में मात्र प्रेम का उभार (उथलापन) ही अधिक होता है जबकि साक्षात्कार में प्रियतम की निरन्तर प्रतीक्षा में रहने से मन की सारी गंदगी दूर हो जाती है और इसकी जगह पर इसमें दैविक–दशाओं रूपी हीरे–मोती भर जाते हैं।

संध्या कहती है कि जब साक्षात्कार की शुभ बेला आती है तो कैसा आश्चर्य होता है। मानों मैं विस्मृत–अवस्था में यह भी भूल गई थी कि वह मेरे समक्ष ही तो है। तभी मैंने अनुभव किया कि मानों मैं धीरे–धीरे उनमें ही लय होती जा रही हूं।

मैंने कितनी बार यह अनुभव किया है कि मैं मरी हुई भी चल–फिर रही हूं। मानों मेरा भौतिक–रूप मुझे अपने में शामिल न कर पाने पर दुःखी हो कर मुझे भूल जाता है। बस तभी महत् साक्षात्कार की परम दशा में हमें प्रवेश मिलता है। हमें लगता है कि मानों अणु–अणु ईश्वरीय–छवि से ही मुस्कुरा रहे हैं और इस तरह अनन्त–यात्रा का यह मानव–उद्देश्य पूर्ण हो जाता है।

मेरे बाबू जी! आपकी यह बिटिया तो सृष्टि के उस क्षण को धन्य मानती है जिस क्षण भूमा की शक्ति को ले कर आपका धरा पर अवतरण हुआ। इतना ही नहीं, स्वतः ही मेरा जी पुकार उठता है कि आपके मुखारविन्द की दिव्य–छवि पर मैं बलिहारी जाती हूं। आपकी यह दैविक–छवि मेरे नेत्रों के समक्ष पुनः पुनः नाच उठती है जो रूप और गुण से परे है। यह आवश्यक तथ्य आप अवश्य स्मरण रक्खें कि न यह अनुभूति सगुण पूजा या निर्गुण का आधार है और न द्वैत–अद्वैत वाद की झलक लिए हुये है। यह तो इन सबसे ही परे अनन्त–यात्रा की यात्रा में बदलती अनगिनत दशाओं की प्रत्यक्षता से ही परिपूर्ण हैं।

गीत संख्या– 29

अपने प्यारे बाबू जी का

(रचना काल–12.12.87)

अपने प्यारे बाबू जी का, उत्सव जब उतरे धरा पर।
खिल उठे है मिशन उनका, प्राणाहुति महके धरा पर।।
आज तक जो प्रतीक थी, भौतिक सुखों की यह मही है,
सज संवर कर नज़र अपने, पीर की ये हो गई है,
नूर की वर्षा हुई, उज्जवल हुआ आकाश ये है।।

सहज-मारग को उतारा, दिव्य संदेशा संजो कर,
थपथपा कर भर गया है, जागरण उनका शुभागम,
छवि सुहानी दे गई तब याद में सौंधी सहर है।।

अब फ़िदाई ही फ़िदा है, बरकतें बरसी हैं ऐसे,
बाबू तेरा सहज भोलापन जुदा बख्शीश जैसे,
पारषद के पालने में सो गए हम बेखबर हैं।।

लग रहा है तेज तेरा, क्या अचम्भा कर गया ये,
पी लिया सब विष फिजां का, दिव्य अमृत भर गया ये,
बेसुधी ने जब जगाया, समझे तब हम बाखबर हैं।।

क्या कहें ऐसा लगे है जिन्दगी अब जी उठी है,
घर भी बदला एक पल में, थिरक अन्तर-गति उठी है,
हो गए पुलकित वो हम में, अब अडिग-गति की लहर है।।

आज आया है बुलावा, 'सत्य-अंतिम' से हमें है,
डग कभी पीछे न देखें, लाल हम उनके ही जो हैं,
प्यार की वह शक्ति दुलराती हमें आठों पहर है।।

अब नज़र यह उठ नहीं पाये, लगी उनकी नज़र है
देख पाया इक नज़ारा, रह गई भौंचक नज़र है
होश में 'उनके' थे जब बेहोश बरसी वह मेहर है।।

है प्रवाहित आदि-धारा आज मानव के लिए जो,
मूर्ति ममता की तेरी पा, धन्य सब जीवन हुए ये,
साम्य-गति भी सो गई कह, जा पथिक उनका नगर है।।

'बाबू' तुम उतरे धरा पर, कुछ फिज़ा ऐसी हुई यों,
प्राण तुममें ही समाये, सहज सौरभ लुट रहा ज्यों,
'संध्या' तेरा रूप लोना, सरस लोना यह सफ़र है।।

व्याख्या :-

मैंने सदैव ही यह देखा है कि जब समर्थ सद्‌गुरू की पावन बसन्त पंचमी का महोत्सव आता है तो लगता है कि हमारे बाबू जी का महोत्सव मनाया जा रहा है और जब उनकी पावन-प्राणाहुति की पावन सुगन्ध से यह धरा महक उठती है तो उनका मिशन खिल उठता है।

यह पृथ्वी जो आज तक भौतिक-सुखों की प्रतीक समझी जाती रही है आज मै प्रत्यक्ष देख रही हूं कि मालिक की प्राणाहुति द्वारा ईश्वरीय-शक्ति के प्रवाह से स्नान करके ऐसी खिल उठी है एवं दैविक-सौंदर्य से ऐसी सज गई है मानों अपने पीर (प्रिय) के समर्पित होने जा रही

है। आज के श्रेष्ठ वातावरण में ऐसा लगता है कि दैविक–नूर की वर्षा हुई है एवं पृथ्वी से ले कर आकाश तक उज्जवल हो उठे हैं।

मुझे लगता है कि इसका कारण यही है कि सहज–मार्ग की, जो मालिक ने हमारे आत्मिक–उद्धार के लिए उतारा है, साधना किसी भी पथ के साधन से परे मानव–मात्र के हित दिव्य संदेश है एवं श्री बाबू जी महाराज के द्वारा पाई पावन ईश्वरीय–धारा ने मानों हमारे अन्तस् में सोई हुई ईश्वरीय–शक्ति को जागृत कर दिया है ताकि हमारे हृदयों में ईश्वर–प्राप्ति की चाह पुनः जी उठे, इतना ही नहीं मैंने पाया है कि जबसे इनकी मौजूदगी का एहसास मेरे अन्तर ने पाया है तबसे इस एहसास ने सतत्–स्मरण से महकता हुआ सवेरा ला दिया है। साँचे अभ्यासी की गति पा कर मानों रात हमारे लिए कभी आती ही नहीं है।

अब जब मेरी दशा उस हालत से आगे उन्नति पाती जा रही है तो मुझे ऐसा लग रहा है कि वर्तमान फ़िदाई की अवस्था भी मानों अब आपमें ही फ़िदा अर्थात् विलय हो गई है। अतः अब मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि आपकी बरकतें (कृपा) मुझ पर कुछ इस तरह से बरस रही हैं कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आपका यह सहज भोलापन मात्र भोलापन नहीं है बल्कि मेरे लिए आध्यात्मिक–दशाओं की वर्षा करने वाला वरदान है। बदलती दशाओं का अनुभव अब मुझे यह बता रहा है कि आपने मुझे पार्षद की दिव्य–दशा रूपी पालने में लिटा दिया है अर्थात् मेरे चारों ओर भी यह दिव्य–दशा ऐसी छाई हुई है कि मैं अपना होश ही खो बैठी हूं।

इतना ही नहीं आपने मुझे दैविक–दशाओं के साथ दिव्य–शक्ति भी प्रदान की है। आश्चर्य तो मुझे यह लग रहा है कि आपने दैविक–शक्ति रूपी तेज का प्रसारण वातावरण में भी ऐसा भर दिया है कि इसने वातावरण के सारे विष को पी लिया है। आज की मग्नावस्था ने ही मानों जब करवट ली तो इस जर्क ने मुझे ऐसी अनुभूति प्रदान की कि मुझे लगा कि मैं गहन निद्रा से जाग उठी हूं और लक्ष्य प्राप्ति की तड़प पुनः मुझमें तेज़ी पकड़ गई है।

संध्या कहती है अब मुझें ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों सुषुप्ति से जाग कर लक्ष्य–प्राप्ति की तड़प ने मेरे आध्यात्मिक–जीवन में नई ज्योति जगा दी है और अब मेरी रहनी का स्थान भी बदल गया है। नव अन्तर–गति भी अब मानों परमानन्द पा कर नृत्य कर उठी है जिसे श्री बाबू जी ने आत्मा का नृत्य नाम दिया और मैं कृतार्थ हो गई। अपने अन्तर के कण–कण में उनका ही दर्शन पाकर रह–रह कर मेरा रोम–रोम पुलक उठता है और अंतर–दशा मानों पुकार कर कह रही थी कि तुझे मालिक ने स्थित–प्रज्ञ दशा प्रदान कर दी है।

अब मैं समझ चुकी थी कि वास्तव में प्राणि–मात्र के लिए मेरे बाबू जी अंतिम–सत्य (भूमा) का निमंत्रण लिये हैं इसलिए स्थित–प्रज्ञ दशा मानों पुकार–पुकार कर कह उठी है कि मेरे डग भी कभी मुड़ कर नहीं देखेंगे क्योंकि हम भी अपने बाबू जी के लाल हैं। एक रहस्य इसमें यह भी है कि इनकी प्यार से भरी शक्ति मानों बार–बार मुझे दुलार जाती है।

आज एक रहस्य मुझे यह भी समझ में आया है कि इनके दर्शन पाकर मेरी दृष्टि अब सदैव के लिए अंतर में समा गई है क्योंकि लगता है कि इसे मालिक की नज़र लग गई है

अतः अब यह कभी वाह्य में नहीं लौट सकती है। यहाँ एक नव–गति का नज़्ज़ारा मेरे समझ में फैला हुआ है। वह यह है कि मानों इनका दर्शन पाकर मेरी नज़र तो इनमें ही समा कर बेहोश हो गई है। और उधर मेरे प्रिय की कृपा–दृष्टि मानों स्वयं में विस्मृत हुई अपनी दैविक–कृपा की निरन्तर वर्षा करके मेरे अंतर के कण–कण को प्लावित कर रही है।

मैं तो इतना ही जान पाई हूं कि आज इनके द्वारा हम प्राणियों के लिए आदि–शक्ति की ही धारा स्वतः ही प्रवाहित हो रही है। इतना ही नहीं, आपकी ममता भरी छवि का दर्शन पाकर हमारे जीवन धन्य हो गए हैं। इनके नगर की रहनी पाकर मैंने अनुभव किया कि सालोक्य–दशा साम्यावस्था की ही दैविक अवस्था है। पुनः इसमें भी लय–अवस्था पाकर साम्यावस्था भी मानों यह संदेश देकर इनमें ही लय हो गई कि ऐ आध्यात्मिक–पथ के पथिक! जा, अब तूने इनका ही लोक पा लिया है।

मेरे बाबू जी! जब मेरा स्मरण पीछे देखता है तो मुझे ऐसा लगता है कि आपके अवतरण से वातावरण कुछ ऐसा उज्जवल हो उठा है एवं आपके शुभागमन से पुलकित भी हो उठा है कि सहज ही हमारे प्राण मानों आपमें ही समाये हुये हैं और सहज–गति की मानों लूट मची हुई है। संध्या तो बस इतना ही जान सकी है कि तेरे दैविक स्वरूप का लावण्य जो समस्त में छाया हुआ है, आध्यात्मिक–पथ को आलोकित कर रहा है और इसीलिए यह सहज–मार्ग हम अभ्यासियों के लिए आनन्द–दायक हो गया है।

गीत संख्या–30

रहें तो ऐसे कि जैसे मिशन हमारा है

रचना काल : 30 अप्रैल

रहें तो ऐसे कि जैसे मिशन हमारा है,
चलें तो ऐसे कि जैसे वतन हमारा है।।

बढ़ें जो आगे तो दुनियाँ का नशा कुछ भी नहीं,
खुली जो आँख तो पायें कि 'वह' हमारा है।।

वतन से आये हैं ये हमको साथ लेने को,
दिखाया 'बाबू' ने मारग–सहज हमारा है।।

ध्यान के दीप में लौ 'उनकी' इच्छा–शक्ति की,
प्रकाश 'उनके' से रौशन हृदय हमारा है।।

लिए मिलन का सन्देश है हमारे लिए,
संभाले ऐसे हैं जैसे हुकुम खुदारा है।।

न लेंगे चैन 'उन्हें' देखे और पाये बिन,
मिले सुकून तभी वह कहे हमारा है।।
मिला जो दर्श तुम्हारा तो ठग गये ऐसे,
फ़िदाई हममें थी, हमसे हुआ किनारा है।।
दिया है रत्न फतेहगढ़ के समन्दर ने हमें,
मिटा के खुद को ही पायें रतन हमारा है।।
मिले जो 'बाबू' तो सारा ज़माना भूल गया,
समाये 'बाबू' तो, हम क्या कहें हमारा है।।
दुआयें बरसें खुदा की रहो चिरायु सदा,
तुम्हारे हम हैं, तुम्हीं ने हमें उबारा है।।
मिले हैं 'राम' किरण पहुंचायेंगे घर-घर हम,
प्रकृति का लाल, रतन 'संध्या' का दुलारा है।।

व्याख्या :-

सहज-मार्ग साधना में प्रवेश पाने पर सर्वप्रथम मैंने यही अनुभव किया कि जैसे मैं मिशन का एक अंग हूं। जैसे शरीर का एक अंग दूसरे अंग के प्रति ऐसा संवेदनशील होता है कि एक के सुख-दुःख दूसरे के सुख-दुःख के समान ही महसूस होते हैं। हम हर अभ्यासी भी आपस में ऐसा ही महसूस करते हैं। ऐसे ही जब हम उन्नति-पथ पर अग्रसर होने लगते हैं तो वतन की दूरी का एहसास क्रमशः हमारे लिए समाप्त होने लगता है और अनजाने ही वतन हमें अपना सा लगने लगता है। यह तो हमारा ही है ऐसा सम्बन्ध सा जुड़ जाता है।

शायद ऐसी दशा हमें इसलिए प्रतीत होती है कि ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों भौतिकता का नशा उतरता जाता है और तब जो होश या सजगता हममें जागृत हो जाती है उससे हमें ऐसा ही प्रतीत होता है कि जिसे हम खोजने निकले हैं वह हमारा बहुत प्रिय है।

भाई, ऐसा हो भी क्यों न जबकि हमारे बाबू जी महाराज स्वयं हमें याद करके आज पुनः भूमा से उतर कर हमें वहाँ अपने साथ ही ले जाने के लिए पधारे हैं और इसके लिए सहज से मार्ग जो नितान्त सत्य और स्वाभाविक (नेचुरल) है, आडम्बरहीन है, पर हमें चलाने के लिए आये हैं।

अब आप पूछेंगे कि 'सहज-मार्ग क्या है ?' तो साधना के द्वारा अभी तक मैं जितना अनुभव करके इसे जान सकी हूं वह तो यह है कि अंतर में हम ध्यान रक्खें कि ईश्वरीय-प्रकाश हमारे अन्दर मौजूद है एवं 'इनकी' ही इच्छा-शक्ति की बाती की लौ से हमारा सारा हृदय प्रकाशित है।

इतना ही नहीं मुझे अंतर में हमेशा ऐसा ही अनुभव होता रहता है कि प्राणिमात्र के लिए ये उपर्युक्त साधना का लक्ष्य प्राप्त होने का दैविक–संदेश लेकर ही उतरे हैं। इस महती कृपा के अतिरिक्त आध्यात्मिक–विकास देने के लिए ये इतने सजग हैं कि ऐसा लगता है कि मानों ईश्वर ने ऐसा हुकुम देकर ही इन्हें हमारी भलाई के लिए भेजा है।

मुझे तो अन्तर में कुछ ऐसी कुरेदन लगती है कि मुझे इनका ही साक्षात्कार पाना है और केवल मात्र ऐसी ही चाह है कि बस ये मुझे मिल जायें। इसके प्रमाण के लिए मुझे ऐसी अनुभूति चाहिए कि मानों ये स्वयं मुझे आवाज़ दे रहे हैं कि 'तू तो मेरी ही है'। तभी मुझे शांति मिल सकेगी। मेरे लिए वास्तव में यही 'शांति' होगी कि बस ये मुझे अपना कह कर पुकार लें।

सच तो यह है कि आपने मुझ पर कृपा ही की है। किन्तु; मेरी दशा तो यह हुई कि जब आपका दर्शन पाया', अन्तर ऐसा मोहित हो गया कि आन्तरिक–दृष्टि ठगी की ठगी रह गई; स्थिर होकर रह गई कि मैंने पाया कि अंतर उनमें ही लय हो चुका था और अपने होने का होश भी मुझसे दूर हो गया था।

आज मैं तो बस इतना ही कह सकती हूं कि सत्य तो यही है कि फतेहगढ़ के दया के सागर (श्री लाला जी साहब) की ही ऐसी दरियादिली है जिन्होंने श्री बाबू जी सा रत्न हमें प्रदान किया है। अब तो बस हम अभ्यासियों का यह दृढ़ निश्चय एवं कर्त्तव्य हो जाना चाहिए कि हम अपनी हस्ती (अहं) को मिटा कर अर्थात् इनमें ही लय लीन कर दें ताकि इनका पूर्ण सत्य समावेश हमारे में हो जाये तभी समर्थ सद्‌गुरु के इस दिव्य–रत्न को प्राप्त कर सकते हैं।

एक बात लिखना ज़रूरी है कि मेरा अनुभव इनके दर्शन की दैविक–अवस्था में ऐसा डूब गया कि मैं सारा संसार ही भूल गई थी। इसके बाद जब 'मालिक' ने कृपा करके मुझे ऐसी अनुभूति प्रदान की मानों बूंद में सागर समाया है। इसी प्रकार का अनुभव मैंने पाया, तब उस अव्यक्त–गति के बारे में भला कैसे कह सकती हूं कि 'मालिक' मेरा हो गया है।

मेरी तो यही प्रार्थना है कि स्वयं ईश्वर की दुआयें आपको यही मिले कि आप हमेशा–हमेशा हमारे बीच में रहें क्योंकि मेरे बाबू जी! हम तो मात्र आपके ही हैं क्योंकि आपने ही हमें भव–सागर से मुक्ति दिलाई है और अपने अंतर में हमें समेट लिया है।

मैं तो अब यही समझ पाई हूं कि अब मेरे राम आप ही मुझे मिल गये हैं तो हमारा यही प्रयास है कि आपकी प्राणाहुति–शक्ति रूपी किरणों को, जहाँ तक होगा, हम घर–घर में फैला देंगे। मेरे बाबू जी! अब हम यह तो जान चुके हैं कि आप प्रकृति–पुत्र और प्रकृति रूपी गुदड़ी के लाल हैं। इतना ही नहीं समर्थ सद्‌गुरु लाला जी साहब के हृदय रूपी सागर के आप दिव्य–रत्न हैं। आपकी यह 'संध्या' मात्र इतना ही व्यक्त कर सकती है कि आप मेरे दुलारे एवं प्राणों से भी प्रिय हैं।

ये कौन धरा पर आये हैं

(रचना काल :- श्री बाबू जी महाराज का जन्मोत्सव 30.4. दिल्ली केन्द्र)

ये कौन धरा पर आये हैं, ये कौन जहाँ पर छाये हैं।
'लाला' के ख़जाने के हीरा, ये जग को सजाने आये हैं।।
थी गुदड़ी काली, पर रहती थी काँधों पर जिसके हरदम,
उस प्यारी गुदड़ी के लालन, साक्षात्कार बन आये हैं।।
सद्गुरु की इच्छा-शक्ति ने, क्या खूब तराशा था इनको,
अब मानव-मन को तराश रहे, ये लाल बनाने आये हैं।।
प्राणों की आहुति दे सबको, भौतिकता की पॉलिश धो दी,
ये कलाकार आदि के जो सत्मूर्ति बनाने आये हैं।।
साँचा स्वरूप देखें अपना, भ्रम में अब और रहे न कोई,
भगवान भी भ्रम में पड़ जायें, वो कितने रूप में आये हैं।।
ऊंचे से नीचे आये हैं, नीचे को ऊपर ले जाने,
ये अद्‌भुत ममता-क्षमता का, साँचा प्रतीक बन आये हैं।।
जागो ऐ दुनियां वालों, ये सुन्दर प्रभात आया अपना,
अब रात्रि कहाँ, संसार कहाँ, जब रामचन्द्र ये आये हैं।।
थी दिल्ली दूर जो 'बाबू जी' कहते थे सब अभ्यासी से,
वो दिल्ली पास हुई सबके, सब इनके दिल में समाये हैं।।
अब एक है चौखट 'सहज-मार्ग' की, नमन यहीं है बस अपना,
जिनके थे तिन तक आ पहुंचे, ले जायें जहाँ से आये हैं।।
ओ समय! सदा चलते रहना, 'संध्या' हैं थके न यह कहना,
तब पावन जन्म दुआ माँगें, बस एक में एक मिला देना।।

व्याख्या:-

दिल्ली केन्द्र में 30 अप्रैल को श्री बाबू जी महाराज अर्थात् श्री रामचन्द्र मिशन के संस्थापक के पावन जन्मोत्सव का वह वातावरण! लगता था पृथ्वी थिरक रही है और आकाश मानों झूम-झूम कर गा रहा है। ऐसे माहौल में उनको समक्ष में पाकर मानों इस गीत के बोल स्वयं ही परमानन्द में डूबे हुये मानों उनके मुखारबिन्दु की ओर ही इंगित करते हुये गा रहे थे। मैं स्वयं विस्मृतावस्था में लीन हुई स्वतः ही प्रकृति की लय पर गाती जा रही थी कि हम सबके समक्ष बैठे हुये इन बाबू जी महाराज के बारे में क्या कहूं कि आज मानव-मात्र के हित पृथ्वी पर कौन-उतर आया है।

लगता है सम्पूर्ण धरा मानों इनके गौरव की गरिमा से खिल उठी है। ऐसा लगता है कि मानों समर्थ सद्गुरु श्री लाला जी साहब के ख़जाने का यह अनमोल-रत्न अपनी दिव्य-छटा से पृथ्वी को सजाने के लिए ही अवतरित हुआ है।

कई बार श्री बाबू जी महाराज के मुख से सुनने को मिला है कि श्री लाला जी साहब धनाभाव के कारण जाड़ों में काली सी कमरिया ओढ़े रहते थे सो आज मुझे ऐसा ही प्रतीत हो रहा है कि वह काली कमरिया उनके पावन कंधों से लिपटी हुई है। उनकी उस प्यारी गुदड़ी के लाल (श्री बाबू जी) समर्थ (श्री लाला जी साहब) के कन्धों का स्पर्श लिए हुये दैविक-शक्ति द्वारा हमें दिव्य ईश्वरीय-साक्षात्कार की श्रेष्ठ दशा प्रदान करने के लिए साक्षात् हमारे समक्ष ही बिराजे हुये हैं।

कैसा दैनिक-संयोग लग रहा है कि सद्गुरू श्री लाला जी साहब ने अपने इस लाल को दैविक इच्छा-शक्ति द्वारा तराश कर दिव्य-विभूति के रूप में हमारे समक्ष उतार कर हमारे जीवन को धन्य कर दिया है। आज उनकी यह दिव्य-विभूति मानों मानव के मन की अपनी दैविक इच्छा-शक्ति द्वारा काट-छाँट कर (तराश कर) सारी अवांछित चीज़ों को हटा कर आध्यात्मिकता के लिए मानों लाल-रत्न के समान ही बहुमूल्य बना रहे हैं।

ऐसी तैयारी के साथ ही अपनी प्राणाहुति का प्रवाह दे कर मन की भौतिकता रूपी पॉलिश को भी धो दिया है। मुझे तो ऐसा लगता है कि ये आदि-कलाकार ही धरा पर उतर आये हैं जिसने सत्-युग के मानव को गढ़ा था, बनाया था। आज पुनः ये मानव-मूर्ति को सत्युगी पुरुष रूप में बदलने के लिए हमारे मध्य विराजमान हैं।

मेरा अपना अनुभव अब यही बता रहा है कि हम पुनः अपने आदि स्वरूप को ही प्राप्त कर लें और भ्रम एवं भूल की चादर को इस तरह से उतार फेंकें कि हमारे ध्यान में ये ऐसे समा जायें कि हृदयों में इनकी प्रत्यक्षता ऐसी उज्जवल हो उठे कि स्वयं भगवान ही इस भ्रम में आ जायें कि उन्होंने तो एक ही दिव्य-विभूति को धरा पर उतारा था किन्तु आज ये अनेक कैसे नज़र आ रहे हैं। इस पंक्ति का दूसरा सुन्दर अर्थ यह भी है कि भगवान भी भ्रम (धोखे) में पड़ जायें कि 'वह' आये तो एक रूप में थे परन्तु अब 'वह' अनेक रूपों में कैसे बंट गये हैं। कितनी सुंदर एवं शुभ घड़ी होगी जबकि हम लय-अवस्था प्राप्त करके इस दिव्य-दशा को प्राप्त कर लेंगे जैसा कि इस समय मैं अनुभव कर रही हूं।

कैसी अनुपम कृपा है इनकी कि हमें नीचे (भौतिकता) से उबार कर श्रेष्ठ आध्यात्मिक-गतियों से सजा कर ईश्वरीय-देश में ले जाने के लिए अपने आदि-स्थान भूमा से उतर कर धरा पर पधारे हैं। वास्तव में प्राणि-मात्र के हित ममत्व एवं दैविक आदि-शक्ति की क्षमता का अद्भुत प्रतीक बन कर ही ये हमारे बीच विद्यमान हैं।

आज इस दैविक-कृपा के स्वरूप के दर्शन पाकर आज मेरी यही प्रार्थना है कि ऐ पृथ्वी पर बिचरने वाले प्राणियों! हमारे हित आज श्री बाबू जी के रूप में दिव्य-सबेरा मौजूद हुआ है; अब हमारे लिए भौतिकता के सबेरे एवं रात्रि का कोई अर्थ नहीं रह गया है क्योंकि जब ये

स्वयं हमें ईश्वरीय दिव्य–देश में ले आये हैं तो फिर हम अभ्यासियों के लिए अब रात्रि और दिन का कोई अर्थ नहीं है। अब तो बस लगन लगी है इनके संग जाने की। मुझे स्मरण है भक्तिमती मीराबाई का यह पद, "मैं तो गिरधर के संग जाऊं" एवं

'रैन भई तब ही उठि जाऊं, भोर भये उठि आऊं,

रैन–दिना वाके संग खेलूं, ज्यों–त्यों ताहि रिझाऊँ'।।

कितना अद्‌भुत संयोग है आज। श्री बाबू जी पत्र में मुझे दी हुई बरकतों (दशाओं) की प्रशंसा करते हुए अन्त में इतना अवश्य जोड़ देते हैं कि 'बिटिया दिल्ली अभी दूर है।' आज इनका दर्शन पा कर मुझे ऐसा लग रहा है कि मानों जिस दिल्ली (दिव्य–देश) की दूरी की ओर इनका संकेत रहता है इनको पाकर मानों वह दिल्ली हम सबके निकट आ गई है। एक कमाल की बात यह भी हुई कि वैसे दिल्ली राजधानी को देखने हम दिल्ली कहाँ आ सकते हैं किन्तु इस दैविक महोत्सव के यहाँ मनाये जाने से हमने यह दिल्ली भी देख ली है।

अब यहाँ तो हर तरफ़ से बस एक ही आवाज़ आ रही है कि हम अभ्यासियों के लिए एवं आध्यात्मिकता में उन्नत–दशाओं की प्राप्ति के लिए प्राणीमात्र के हित मात्र सहजमार्ग–साधना की चौखट पर ही हमें सिर झुकाना है क्योंकि अनुभूति स्वयं यही बोल रही है कि हम जिनके हैं उन चरणों में ही हम पहुंच गये हैं और अब यह इनकी मर्ज़ी पर ही निर्भर करता है कि ये जहाँ चाहें, जैसे चाहें, हमें ले जायें।

आज इनके अवतरण के युग (समय) से भी मैं प्रार्थना कर रही हूं कि तुम सदा–सदा इनके पावन चरणों को मस्तक पर धारे हुये चलते ही रहना। संध्या इतना ही कहती है कि कभी थकन के एहसास को समीप न आने देना। अपने श्री बाबू जी से तो मेरी यही प्रार्थना है अथवा यह कहूं तो उचित होगा कि आज आप के अवतरण का यह शुभ–दिन आपसे दुआ माँग रहा है कि आप एक हैं तो इन अनेक अभ्यासियों को बस अपने में ही लय कर लीजिए।

गीत संख्या–32

श्री बाबू जी हमारे हैं

श्री बाबू जी हमारे हैं बाबू जी हमारे हैं,
हम इनके हैं, ये हमारे हैं, सर्वस्व हमारे हैं।।
हम इनमें ही लयलीन रहें,
अपने को इनमें विलीन करें,
प्राणों से प्यारे हैं।।

इनको पाया है सब खो कर,
जी से न भुला पाया पल भर,
ये सबसे न्यारे हैं।।

इनकी आँखो से जग देखा,
इनकी नज़रों से इन्हें देखा,
ये जग उजियारे हैं।।

अपनी प्रलय इनमें देखी,
इनकी छवि अपने में देखी,
इनके मतवारे हैं।।

तिल–तिल है, अहम् गलता जाता,
मनुआ इनमें रमता जाता,
अस्तित्व हमारे हैं।।

बिक चुके दास इनके दर पै,
न्यौछावर आस–प्यास सब है,
शहंशाह हमारे हैं।।

कहते हैं खजाना 'लाला' का,
लाये हैं लुटाने हमारे लिए,
वरदान हमारे हैं।।

अध्यात्म सहज–पथ अविचल है,
जो असम्भव था, अब सम्भव है,
सुप्रभात हमारे हैं।।

इनके चरणों में पड़े रहना,
'संध्या' इनके ही हो रहना,
'लाला जी' के प्यारे हैं।।

मेरे बाबू जी! मेरी लेखनी द्वारा लिखी गई पुस्तकों अथवा गीतों में आध्यात्मिक–उन्नति की अनुभूतियाँ ही हर दशा का उज्जवल प्रतीक हैं। यह कब कैसे लिखी जाती हैं, मुझे इसका ज्ञान नहीं किन्तु मन की दृढ़ता मेरे समक्ष सच्चाई का प्रतीक है।

व्याख्या:-

इस गीत में भी अन्तर की दृढ़ता ही बोल रही है कि मुझे आध्यात्मिक–गतियाँ प्रदान करने वाले श्री बाबू जी ही अब मेरे हो गये हैं। यह अनुभूति इस अभ्यास का ही सुन्दर परिणाम

है कि 'बाबू जी मैं जैसी हूं तेरी ही हूं।' जैसे ही मेरे अभ्यास ने दशा की असलियत को छुआ वैसे ही ऐसी दशा ही मुझे प्राप्त हो गई कि अब आप मेरे हो गए हैं। ऐसी अनुभूति पा कर मेरा मन आज स्वतः ही यह पुकार उठा है कि आप वास्तव में मेरे सर्वस्व ही बन गए हैं अर्थात् सर्व + स्व (अहं अपने होने का भान) आप में ही विलीन हो गया है जिसने मुझे यह अनुभूति प्रदान की है कि मैं यह कह सकती हूं कि आप मेरे सर्वस्व हैं।

मैंने तो बस यही पाया है कि यदि हम अपने को भुला कर इनमें ही लय (डूबे) रहने का अभ्यास करें तो एक दिन यह दशा हमें प्राप्त होगी कि हम इनमें विलीन हो जायेंगे, तभी ये हमें प्राणों से भी प्रिय लगने लगेंगे अर्थात् मुझे ऐसा लगने लगा कि अब मानों मेरी आत्मा इनके चरणों में लिपट गई है और तभी यह स्थिति व्यक्त हो गई कि ये हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय लगने लगे।

मेरे बाबू जी! इस पावन-गति की प्राप्ति के पश्चात् मुझे अब ऐसा लग रहा है कि अब इन्हें सौंप देने के लिए मेरे पास कोई चीज़ ही नहीं रह गई है। एक अलौकिक अनुभूति मुझे यह भी मिल रही है कि मानों मेरा जी आपकी याद को ले कर कहीं छुप गया है और एक पल के लिए भी याद से अलग नहीं होना चाहता है- बस इसका कारण यही लगता है कि 'ये' सारी दुनियाँ से अलग परम परमात्म-शक्ति हैं।

आज भी मुझे याद है कि अभ्यास में पहले तो लगता था कि मानों यह संसार या मेरे स्वजन-सम्बन्धी सभी को मेरी निगाह नहीं बल्कि दुनियाँ को मैं इनकी ही दृष्टि से निहार रही हूं, पुनः ऐसी स्थिति आई कि ऐसा अनुभव होने लगा कि स्वयं इनका दर्शन भी मानों मैं इनकी ही पावन-दृष्टि से पा रही हूं और यह सत्य भी स्पष्ट हो गया है कि आज संसार इनके ही दैविक प्रकाश से प्रकाशित हो गया है। सच तो यह है कि यह एक अचरज भरा अहसास मैंने ध्यान में पाया।

साधना प्रारम्भ करने के कुछ काल बाद ही मुझे ऐसा लगा कि न जाने कब और कैसे मेरे परम-जीवन-सर्वस्व श्री बाबू जी मेरे अन्दर बिना किसी प्रयास के स्वतः ही समा गये हैं किन्तु तभी एक आश्चर्य जनक अनुभव मुझे हुआ कि मानों धीरे-धीरे मेरा अपना रूप अपने होने का भान भी स्वतः ही इनमें लय होने लगा और तभी अनजाने ही मेरा मन इनमें पूर्णतयः विलीन हो जाने के लिए मानों मतवाला हो गया।

इस अवस्था की प्राप्ति के बाद ही मैंने अनुभव किया कि मैं कौन हूं इस बात को याद भी करूँ तो भी स्मरण में रखना असंभव था मेरे लिए। इसके साथ ही जुड़ा हुआ था ऐसा अनुभव कि मन नाम की चीज़ मुझमें कुछ है यह बात ही मुझे विस्मृत होने लगी थी क्योंकि मैंने पाया कि मन की रंगत भी इनकी ही दिव्य-छवि में बदलती जा रही थी एवं इनका तेज भी इसमें समाता जा रहा था और एक दिन ऐसा आया कि यह 'मुझे', अपना अस्तित्व ही महसूस होने लगे।

मेरे बाबू जी! मैं तो अब आपकी ही शरणागत, आपके ही द्वार पर पड़ी हुई आपकी ही दास हूं। एक यह भी अजीब एवं अलौकिक अन्तर्दशा मेरी हो गई है कि लगता है कि जो

साक्षात्कार की आशा एवं तड़प थी वह सब ही मानों अब आप में ही समा गई है। अब आप शहंशाह हैं और मैं आपके द्वार पर पड़ी एक सेविका हूं आप जैसे चाहें रक्खें। "जो पहरावे सोई पहरूँ, जो देवे सोई खाऊं; एवं यहाँ तक फीलिंग (भाव) है कि "बेचे तो बिक जाऊं।" वास्तव में भक्तिमती मीराबाई की आध्यात्मिक-दशाओं के वर्णन के भाव मानों अब मेरा हृदय कुछ समझ पाया है।

मेरे बाबू जी! मैंने सुना है कि आप अपने परम प्रिय समर्थ सद्गुरू का सौंपा हुआ दिव्य-गतियों का ख़जाना हम प्राणियों के लिए लुटाने को लाये हैं। वास्तव में आप हम सबके मध्य दैविक-वरदान के रूप में ही पधारे हैं।

मुझे लग रहा है कि आपका सहज-मार्ग आध्यात्मिकता के लिए अब प्राणिमात्र के हित सदैव ही उज्जवल एवं अटल पथ है। मैंने पाया कि जो दशायें, हम मामूली प्राणियों के लिए, प्राप्त करना असंभव था उनकी प्राप्ति, आपकी कृपा एवं शक्ति का सहारा पाकर अब सम्भव हो गयी हैं। मुझे तो यही लगता है कि मानों प्राणियों के लिए आध्यात्मिकता का सुंदर प्रभात आ गया है।

इसलिए आज सबसे मेरी यही विनती है कि पृथ्वी पर अवतरित इस दिव्य-विभूति की शरणागत हो कर इनके पावन-चरणों में ही पड़े रहें। संध्या का अब यही कहना है कि अब आध्यात्मिक-विकास के लिए हम अपने को इनके ही समर्पित कर दें। इनमें एक यह भी विशेष बात है कि यह अपने सद्गुरू श्री लाला जी साहब के परम-प्रिय हैं, प्राण हैं एवं जीवन हैं।

गीत संख्या-33

बसन्त आया क्या है लाया

(रचना काल- बम्बई में बसन्त-पंचमी महोत्सव)

बसन्त आया, क्या है लाया, देखते ही रह गये।
धरती ने जो नूर पाया, देखते ही रह गये।।
किसका साहस था जो दैविक-कल्प को पूरा करे,
आदि-शक्ति को उतारे, धन्य पृथ्वी को करे,
बीड़ा 'लाला' ने उठाया, देखते ही रह गए।।
प्रकृति ने आँचल सजाया, पुरुष भी विस्मित हुआ,
नेह से लेने को चुम्बन, भूमा भू पर छा गया
समर्थ की नज़रों ने देखा, देखते ही रह गए।।

सात महीने साधना का 'लाला' को फल मिल गया,
छः दिवस का दिव्य–बालक, प्राणाहुति को पी गया,
सद्‌गुरू की पुलक–पलकें, देखते ही रह गए।।

सादगी और शून्यता में सहज भोलेपन का संगम,
अवतरण से पहले देखा दृश्य पाया चरण–चुम्बन,
करम 'बाबू' का ये देखा, देखते ही रह गए।।

भूलना चाहें भी तुमको, भूल खुद को भूल जाये,
याद कैसे रख सकें, तुम याद में ऐसे समाये,
भेद दर्शन का दिखाया, देखते ही रह गए।।

'लाला' जी का लाड़ला, ऐसा हमें था भा गया,
भाग्य ईश्वर–धार बन कर, स्वयं हममें आ गया,
ईश का भी वह विधाता देखते ही रह गए।।

बसन्त के गौरव के आगे, शीश युग का नत हुआ,
प्रगट मानव रूप में जो तेज 'बाबू' का हुआ,
उनके सद्‌गुरू का महोत्सव, देखते ही रह गए।।

सूर्य जाये, चन्द्र जाये धरती अरु आकाश जायें,
एक अविनाशी हैं 'बाबू'जो कभी आयें न जायें,
बरक़ते बरसी हैं ऐसी, देखते ही रह गए।।

जो युगों से सोया युग था, आज हम इसको उठा लें;
ओट में पर्दे के जो है, ध्यान में अपने बसा लें,
'संध्या' यह कैसी फ़िदाई, देखते ही रह गए।।
'संध्या' यह कैसी जुदाई, देखते ही रह गए।।

बसन्त–पंचमी का महोत्सव हमेशा ही हम अभ्यासियों के लिए और समस्त विश्व के प्राणियों के लिए कौन सा दैविक–संदेश दे आता है यही दैविक–रहस्य शायद प्रकृति–पुरुष ने आज इस गीत के माध्यम से सभी के समक्ष प्रत्यक्ष कर दिया है।

पैंतालिस बसन्त–महोत्सवों के दैविक एवं अलौकिक वातावरण की दिव्यानन्द मय अनुभूतियों को मेरे हृदय ने उनमें लय होकर मेरे जी में उतारा है इसीलिए इससे अलौकिकता का रहस्योद्‌घाटन मेरे बाबू जी महराज ने मेरे समक्ष उज्ज्वल कर दिया है तभी तो यह लेखिनी भी इसे उतारने को चल पड़ी है। मैने पाया कि बसन्त पंचमी का महोत्सव हमारे लिए यह दिव्य संदेश लाया है कि जिन समर्थ–सद्‌गुरू श्री लालाजी के पावन जन्मोत्सव पर सब अपने मिशन का वार्षिक–उत्सव मनाने के लिए प्रतिवर्ष एकत्रित होते हैं यह हमारे लिए क्या

दैविक-संदेश लाता है और पृथ्वी को दिव्य नूर से भर जाता है जिसे निरख पाने के लिए मुझे अपने बाबू जी महराज से दिव्य-दृष्टि मिली है। उसी दृष्टि से मैं यह पावन-दृश्य देखती ही रह गयी हूं।

बसन्त-महोत्सव के द्वारा और अपने बाबू जी की बख्शी हुई दिव्य-दृष्टि से जो मैंने पाया है वह समर्थ श्री लाला जी के स्पिरिचुएल-जाइन्ट होने का उज्ज्वल प्रमाण भी है। सृष्टि के आदि सौंदर्य एवं आदि आध्यात्मिक-गौरव को पुनः धरती पर ले आने के संकल्प को, जो इनके (श्री लाला जी के) गुरू महाराज ने इन्हें सौंपा था, पूर्ण कर पाने का साहस केवल श्री लाला जी साहब ने ही किया;इसी कारण वे आदि गुरू; समर्थ; सद्गुरू की दैविक-उपाधियों से विभूषित हुये। इस दैविक इच्छा-शक्ति को पूर्ण करने वाले श्री लाला जी के गौरव को सब निहारते ही रह गए।

इस आदि-शक्ति (श्री बाबू जी) के अवतरण का जब समय आया तो लालाजी साहब ने पाया कि प्रकृति ने इनके स्वागत में प्यार के आँचल को धरा पर फैला दिया। एक बार ईश्वरीय-शक्ति भी इनके शुभागमन के एहसास से मानो विस्मित होकर ठहर गई। यह दैविक-बहार मानो समस्त को आगाह कर रही थी कि यह भूमा की शक्ति का रत्न दिव्य-विभूति के रूप में धरा पर प्रकट हो गया है। सब कुछ भूलकर समर्थ सद्गुरू ने जब इस दैविक-नज़ारे को देखा तो देखते ही रह गए।

केवल सात महीने में ही श्री लाला जी ने यह आदि गुर समझ लिया था इसीलिए इस दैविक-इच्छा को पूर्ण करने के संकल्प का स्पन्दन लिए हुए वे आदि शक्ति भूमा के केन्द्र में प्रवेश पा गये। अतः ये कहावत चरितार्थ हो उठी कि सागर में जितनी गहन छलाँग लगाओगे वहीं सच्चा मोती मिलेगा। फलस्वरूप समर्थ सद्गुरू भूमा के सागर से श्री बाबू जी महाराज सा दिव्य रत्न ले आये। इतना ही नहीं सत्य की परीक्षा हेतु उन्होंने इस दिव्य-बालक को जबकि वह केवल छः दिनों का था, भूमा की शक्ति से ट्रांसमिट किया, तब उन्होंने यह अलौकिक आश्चर्य देखा कि वह छः दिनों का बालक उनकी दी हुई प्राणाहुति (भूमा की शक्ति) को पी गया था अर्थात् सम्पूर्ण दी हुई शक्ति इनमें समाहित हो गयी थी। तभी से समर्थ सद्गुरू ने उनकी आध्यात्मिक शिक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया और उसी दिन से उस दिव्य बालक की भौतिक-सुरक्षा हेतु स्वयं को उनमें मर्ज (प्रवेश दे दिया) कर दिया और वह तथा सारा दिव्य-लोक सद्गुरू की आत्मिक प्रसन्नता युक्त पलकों की पुलकन (रोमांच) को सब देखते ही रह गये।

अब ज़रा मैं भूमा की इस दैविक एवं अनुपम धरोहर के दर्श के विषय में जो समझ सकी हूं उसको लिखने में मैं पीछे नहीं हटूंगी। मैंने पाया कि मानो सादगी के चोले में उनकी आँखों को उनसे ही खाली पाना (शून्यता) एवं इस पर भी स्वयं के इस दिव्य रूप में उनके चेहरे का वह दैविक-सहज भोलापन मानों हमें दिव्य-दशाओं के संगम में डुबो देता था। यह उनकी ही विशेष कृपा अपनी इस बिटिया पर थी कि ऐसे दिव्य-स्वरूप का विराट्-दर्शन उन्होंने इसे अपना भौतिक-साक्षात्कार प्रदान करने से पहले ही प्रदान कर दिया था और कदाचित् तभी उन्होंने

मुझे अपने चरणारविन्दों में स्वीकार कर लिया था। अपने बाबू जी महराज की ऐसी परम कृपा को मैं देखती ही रह गई।

वह दिव्य–दर्शन क्या था? कि होश आने पर भी मैं स्वयं उन्हें भुला पाने में असमर्थ हो गई थी क्योंकि जब भी उस दिव्य–दर्शन को भुलाकर वर्तमान अभ्यास में डूबना चाहा तो लगता था कि मानों उनके भूलने के प्रयास में मैं स्वयं खुद को ही भूल जाती थी या यों कहूं कि स्वयं भूल ही उन्हें भूलना नहीं चाहती थी। समक्ष में मेरे एक ऐसी दिव्य–दशा उनकी ही प्रदान की हुई थी कि 'उनकी' याद में तो खुद वे इतने समाये हुए थे कि भूल को भुलाने की याद की क्षमता एवं स्थान नहीं बचा था। वास्तविक–तथ्य तो यही था कि उन्होंने मुझे स्पष्ट कर दिया था कि वास्तव में दिव्य–छवि और भौतिक–दर्शन में भेद क्या है। यह भेद उन्होंने मुझे समझा दिया था।

कदाचित् इसीलिए समर्थ सद्गुरू लाला जी साहब के लाड़ले लाल हमारे अन्तर को इतने अच्छे एवं प्रिय हो गये थे कि उनके द्वारा निरन्तर पाया हुआ प्राणाहुति का प्रवाह ईश्वरीय–धारा के रूप में हमारा सौभाग्य बनकर हमारे अंतस् में समा गया है। यद्यपि यह भी सत्य है कि वह अपने दैविक–व्यक्तित्व में ईश का भी विधाता (रचयिता) ही प्रतीत होता था। और हम? यह दैविक–नज़ारा (दृश्य) देखकर मानों अवाक् रह गये थे।

सत्य तो यही है कि बसन्तपंचमी के पावन–महोत्सव के परम गौरव के समक्ष युग का शीश भी झुक गया है क्योंकि मानव रूप में दैविक आदि–शक्ति के स्वरूप तेजोमय श्री बाबू जी महाराज के सद्गुरू श्री लाला जी साहब के पावन जन्मोत्सव का अद्भुत वातावरण हम अवाक् से खड़े देखते ही रह गये।

मैं तो यही कहती हूं कि सूर्य भले ही न रहे, चन्द्रमा भी चला जाये; यह पृथ्वी और आकाश भी सदैव के लिए विलीन हो सकते हैं; किन्तु हमारे 'श्री बाबू जी महराज' ही अविनाशी हैं जो सदैव थे, सदैव हैं और सदैव रहेंगे इसका प्रमाण भी यही है कि आज भी उनकी प्रदान की हुई दिव्य–बरक़तें इस तरह से हम अभ्यासियों पर बरस रही हैं जिसकी अनुभूति पाकर हम ठगे से खड़े रह गये हैं।

मैं आज आंतरिक–दृढ़ता से कह सकती हूं कि जो सत्युग युग–युगों से सो गया था, आज हमारे में वह दैविक–शक्ति जागृत हो गई है कि हम उस सुषुप्त हुए सत्युग को फिर से जगा दें ताकि अपने श्री बाबू जी महराज के दिव्य एवं महत् संकल्प को पूर्ण करने में कुछ सहयोग हम अभ्यासी–भाइयों का भी जुड़ जाये और हमारा यह मानव–जीवन धन्य हो जाये, इतना ही नहीं जो हमसे पर्दे की ओट में छुप गये हैं उन्हें अपने ध्यान में हम इस प्रकार से बसा लें कि ध्यान ही विलीन होकर उनके ही विराट् में लय हो जाये। उनकी 'संध्या' तो बस इतना ही कह सकती है कि उन्होंने मुझे यह कैसी लय–लीनता की अवस्था प्रदान की है जिसे पाकर आज मैं विस्मृत–अवस्था में उनके ही चरणों में पड़ी हुई हूं 'संध्या' आज यही सोच रही है कि उन्होंने मुझे जुदाई की जगह सदैव के लिए अपने में विलीन कर लिया है। कैसा अनुपम एवं दिव्य–उपहार उन्होंने अपनी बिटिया को प्रदान किया है।

आप मुस्काते रहें दीदार हम पाते रहें

आप मुस्कातें रहें, दीदार हम पाते रहें।
आरज़ू दुनियाँ करे, ब़स ग़ौर फरमाते रहें।।
'लाला' के जी में बसे तुम अरु तुम्हारा नूर है,
फ़ैज़ की वर्षा से तेरी, विश्व ये भरपूर है,
श्वांसों में भीगे तेरी, मन–प्राण नहलाते रहे।।
जिस्म का तो अब नहाना, भूल बैठे हम सभी,
याद भी ये रख सके ना, बदले थे कपड़े कभी,
आवरण सब हट गये, बस पीर सहलाते रहे।।
हमको परमानन्द में रखा है तुमने इस क़दर,
हाल वीराना मगर ये गीत गाये किस क़दर,
देश जब प्रिय का था आया, ढूंढते खुद को रहे।।
सत्य–पद था सामने, जी की लगी थी जी रही,
सहज–शक्ति सहज ही, हमको निमंत्रण दे रही,
खूबसूरत था समां, पलकें बिछाये हम रहे।।
ओ शहन्शाहे! तेरी शक्ति ने दिखलाया कमाल,
ये अनूठा सत्य भी कर डाला है तुमने बहाल,
ईश भी सिज़दा करें, हम शून्य से चलते रहे।।
सोच आया ध्यान 'उनका' ही करम ये कर गया,
शेष का अवशेष भी, चिलमन में जाके छुप गया,
बख़्शा था सिंगार 'साहिब' ने झुकाये सिर रहे।।
जब ज़रा गर्दन उठाई, होश ने खुद को सम्भाला,
जड़–समाधि जड़ हुई, जब रूप देखा वो निराला,
हम खड़े भौंचक थे लेकिन जश्न भी मनते रहे।।
'बाबू' हम तो भूल जाते सच नज़ारा भी सुहाना,
केन्द्र की तह में समाया, समय है तेरा दिवाना,
यह हक़ीक़त 'आपकी' नज़रों से हम छूते रहे।।

प्रेम की लचकन अनोखी, क्या बतायें, क्या कहें,
हुलस के रह जायें अखियाँ, खबर क्या थी क्या कहें,
'संध्या' सलवट ओढ़नी की, देखते बस हम रहे।।

व्याख्या :-

(दिव्य-साक्षात्कार के समय की सबके लिए मेरी आरज़ू)

ओ मेरे बाबू जी! आज जब इस दिव्य साक्षात्कार की अनुपम दशा में आपने मुझे लय कर ही दिया है तो लगता है कि आपकी कृपा ने ही इस एक दैविक-आरज़ू को (जिससे जिन्दगी क़ायम रह सके) शायद इसीलिए मेरे में स्थापित कर दिया है। जिस तरह से मानव जीवन के लक्ष्य ईश्वरीय-साक्षात्कार की पूर्णता को मेरे लिए उतार लाये हैं और प्रसन्न होकर अपनी इस बिटिया के समक्ष भी खड़े हुए हैं- अब मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप हर समय मुस्कुराते हुए सदैव मेरे समक्ष मौजूद रहें। इतना ही नहीं, यदि संसार में किसी भी प्राणी की आरज़ू आपको इस दिव्य-साक्षात्कार पाने के लक्ष्य की याचना लिए हुये पुकारे तो आप उस पर ग़ौर अवश्य करें क्योंकि मुझे ऐसा लग रहा है कि आपका मात्र ग़ौर करना ही प्राणियों के इस दैविक लक्ष्य-पूर्ति का आधार बन जायेगा और तब आपकी परम दैविक शक्ति का प्रवाह ही (ट्रांसमिशन ही) समस्त की आरज़ू को पूर्णता प्रदान करेगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

मैं देख रही हूं कि समर्थ सद्‌गुरू लाला जी साहब के जी में मात्र आप ही नहीं वरन् भूमा का अदृश्य-नूर भी आपके सहित समाया हुआ है। आज यह समूचा विश्व श्री बाबू जी महाराज के फैज़ (ट्रांसमिशन) की वर्षा से भरपूर हो उठा है। शायद यही कारण है कि हमें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि हमारी हर श्वांस आपके ही फैज में ही डूबी हुई है जिससे हमारा मन एवं प्राण आपके फैज में ही बराबर स्नान करता हुआ पावन हो रहा है हमें ऐसा ही अनुभव हो रहा है।

अब सत्य-दशा तो ऐसी हो गयी है कि हमारा शरीर नहाया है या नहीं, इस ऊपरी अहसास को तो मानों हम भूल ही चुके हैं और जब शारीरिक-भान भी मैं इस सीमा तक भूल गयी हूं कि यह भी याद नहीं रख पाती हूं कि मैंने कपड़े भी बदले हैं या नही। यह भौतिक-क्रिया ऐसी स्वाभाविक हो गई है कि जिसका कोई आभास कायम नहीं रह पाता है। इसका कारण बस यही लगता है कि जब अनुभव मुझे यह बताता है कि तेरे सारे आत्मिक आवरण हट चुके हैं और जब भी दृष्टि अन्तर को टटोलती है तो यही लगता है कि मानो अर्न्तदृष्टि अब अन्तर को नहीं वरन् उसमें फैली हुई साक्षात्कार प्राप्त करने की पीर का ही स्पर्श पाती है।

ओ मेरे बाबू जी! आपने मेरे अन्तर को इस हद तक परमानन्द की हालत की सहज-गति में डुबो (लय कर) दिया है कि बजाय परमानन्द की अनुभूति के मुझे अब सब ओर वीरानापन ही महसूस होता है परन्तु फिर भी परमानन्द की परम-स्थिति में डूबे हुए मेरा अन्तरमन गाता रहा है। यह परम-स्थिति इतनी सहजता को प्राप्त हो गई थी कि जब सालोक्यता की हालत में

(ईश्वरीय–देश में) आपने मुझे प्रवेश दिया तो मैं स्वयं अपने को ही नहीं खोज पाई और भौंचक खड़ी रह गई।

मेरे बाबू जी फिर जब आपने ईश्वरीय–शक्ति के केन्द्र में लय करके (नहलाकर) आगे ले चलने को निकाला तो मैंने पाया कि मैं सत्य–पद के द्वार पर खड़ी थी किन्तु फिर भी मेरे जी की लगी तो कहीं और, किसी और को खोज रही थी। किन्तु वहाँ मैंने एक यह अलौकिक–दशा और पाई कि मानों सत्य–पद के द्वार से एक सहज–कशिश (दैविक–आकर्षण) लगातार मुझे अपनी ओर ऐसे आकर्षित् कर रहा था मानों उस द्वार में प्रवेश करने का मुझे यह नेह–निमंत्रण था। कैसे कहूं कि यह समां (वातावरण) कितना सुहावना था किन्तु मेरा जी तो मानो पलकें बिछाये हुये अपनी प्रिय की ही राह निहार रहा था।

ओ भूमा की शक्ति के शहन्शाह! आखिर आपकी दिव्य–शक्ति ने अपना वह दैविक–कमाल भी मेरे लिए प्रगट कर दिया कि अन्तिम–सत्य खुद में अनूठा एवं दिव्य भी है। वह अन्तिम–सत्य दशा क्या थी? आप ज़रूर जानना चाहेंगे तो आप अवश्य सुनें कि मेरे समक्ष ऐसी दशा प्रत्यक्ष थी कि मानों ईश्वर स्वयं हमें सिज़दा (सिर नवाना) कर रहा था क्योंकि कोई मुझे उनमें लय करके उनसे भी (ईश्वर से) अलग करके, सत्य–पद के द्वार में प्रवेश देकर, भूमा के वैभव (सेन्ट्रल–रीजन) में प्रवेश दे रहा था और मैं मानों शून्य हुई उसमें प्रवेश पा रही थी।

उस अलौकिक समय में मेरे अन्तर में केवल एक ही विचार था (जो 'मालिक' के संकल्प में ही लय था) कि कैसा अद्‌भुत है कि अपने श्री बाबू जी के ध्यान में लय रहने से, विलीन हो जाने से, आज उनकी कृपा ही यह रंग (दिव्य–दशा) मुझमें उतार लाई है, अथवा मेरे लिए सम्भव बना सकी है। आगे मैंने कैसी आश्चर्यजनक अनुभूति पाई कि मैं जो शून्य (ज़ीरो) शेष रह गयी थी वह शेष (जीरो) की अनुभूति भी अदृश्य हो गयी थी; इसके स्थान पर जो शेष अर्थात् उसका भी अवशेष बचा था वह 'मालिक' की कृपा द्वारा बख़्शा हुआ था। आज इस गीत का अर्थ लिखते हुए जब एक–एक दशा का चित्र सामने प्रत्यक्ष होता है तो वह स्वयं में अनूठा एवं आदि–सत्य (ट्रुथ) लगता है। मुझे लग रहा है कि मानों यह आदि–सत्य भूमा के झीने घूंघट से झांक रहा था; मैं तो बस उनके द्वारा उतारे हुये, निखारे हुए दैविक–श्रृंगार के आगे सिर झुकाये हुये खड़ी थी।

इसके उपरान्त क्या हुआ? मानो मेरे 'मालिक' श्री बाबू जी ने मेरे होश को संभाला और मेरी गर्दन ऊपर उठ गई। उन्होंने ही उस दैविक होश का होश (अंदाज़) मुझे प्रदान किया। तब मैंने पायाकि जो दशा बीत गई थी वह जड़–समाधि थी। परन्तु अचानक यह क्या हुआ? मैंने पाया कि आखिर वह जड़–समाधि की दिव्य–अवस्था भी इसीलिए जड़वत् हो गई थी कि अब मेरे समक्ष श्री बाबू जी का जो दैविक–स्वरूप था, उसने हमें भौचक्का सा खड़ा रहने को विवश कर दिया था। उनके साम्राज्य में मानों उनके दर्शन अर्थात् भूमा के अंश के सौंदर्य का दर्शन पाकर मानो जश्न (उत्सव) मनाया जा रहा था।

मेरे बाबूजी! बहुत सम्भव था कि मैं उस दैविक, अनूठे एवं सुहाने दिव्य–दृश्य को भूल जाती क्योंकि वह (दृश्य) याद की गम्य से परे, स्वयं में अछूता था लेकिन मैंने पाया कि वह अनुपम दिव्य–दृश्य तो मुख्य–केन्द्र , भूमा की तह में समाया हुआ था और आपके युग–परिवर्तन के संकल्प के कारण समय भी आपका ही दीवाना बन गया है। यह परम–सत्य मैं पाठकों के समक्ष प्रगट करने में ज़रा सा भी नहीं हिचकूंगी वास्तव में यह दैविक–रहस्यमय दर्शन का समां मैं मात्र आपकी ही प्रदान की हुई अनुपम–दृष्टि द्वारा छूती भर रही हूं; जी भर कर स्वयं मैं देख रही हूं, यह अनुभूति मेरे पास नहीं थी।

हे बाबूजी! आपके इस अनोखे दिव्य–साम्राज्य में मैंने हर बात अनोखी पाई थी। वैसे तो प्रेम को 'तैल धारावत्' की भाँति ही कहा जाता है परन्तु यहाँ तो प्रेम की लचकन (सहज मुलायमपन) की ही तारीफ़ है क्योंकि यह भी 'मालिक' के स्वतः समर्पित हो जाता है इसलिए इसके बारे में मैं किसी को कुछ नहीं बता सकती हूं। यहाँ तक कि इस अनुपम–दृश्य की झलक पाने के लिए मेरा 'मैं' अपने श्री बाबू जी के द्वारा उनकी ही नज़र की बखशीश पाकर भी आज यह नहीं कह सकता है कि मैंने कुछ देखा है। ऐसा लगता है कि मानों उस परम दैविक–रहस्यमय दृश्य की झलक को वे दैविक–अंखियाँ भी भूली हुई थीं, उनमें भी याद रखने की शक्ति नहीं थी। फिर क्या कहूं और कैसे लिखूं। संध्या कहती है कि 'मालिक' से मेरी केवल इस बात की शिकायत है कि जब सारा दैविक–रहस्य एवं दैविक–समां तो समक्ष में रख दिया किन्तु मेरे सिरताज ने अपने और मेरे मुखड़े के मध्य मात्र ओढ़नी की ओट (आड़) ही क्यों रखी है। इससे मैं यहाँ की मर्यादा और दिव्य–वैशिष्टय (डिवाइन–कैरेक्टर) के कारण सिर को हिला भी नहीं सकती क्योंकि यहाँ की सहज–मर्यादा मुझे विवश किये हुए है।

गीत संख्या–35

हम तो दिल को लुटाये जाते हैं

हम तो दिल को लुटाये जाते हैं,
उनको ख़ुद में समाया पाते हैं।।
        देखो–देखो ज़रा अन्दर निगाह कर देखो,
        प्राणाहुति से सभी, भीगे से नज़र आते हैं।।
पाँव रखने का भी अब होश किसे बाकी है,
हम तो ब्रह्माण्ड में, उनमें ही नज़र आते हैं।।
        जानेगा कौन कि है प्रेम ये कितना व्यापक,
        डूबते–फैलते, लय होते नज़र आते हैं।।

सहज–मारग नहीं मारग हमारे चलने का,
पुकार युग की है, हम बहते चले जाते हैं।।

प्यारे हैं आप तो प्राण कहाँ रक्खें हम,
प्राणाहुति प्राण में, बहते से नज़र आते हैं।।

बहके हम थे तभी तो आये शरण 'बाबू' की,
ध्यान में डूबे हुए, अब योगी नज़र आते हैं।।

न पूछ कैसा हुआ धोखा, हमको हमसे ही,
खुद की खुद से बेवफाई नज़र पाते हैं।।

नज़र इन्हें न लगे उम्र की कभी भाई,
'संध्या' बेसुध हुए, हम गाते चले जाते हैं।।

व्याख्या :-

अहेतुक प्रेम अपने अभ्यासियों पर लुटाने वाले मेरे बाबूजी ही हैं। यदि वे हमसे साधना में प्रेम, लय–अवस्था आदि चाहते हैं तो वे इसकी अगुवाई प्रथम स्वयं ही करते हैं। सर्वप्रथम हम अभ्यासियों के गंदे हृदयों की गंदगी को अपनी इच्छा–शक्ति द्वारा साफ़ करते हुए हमारे अहं को भी हमसे अलग करते हुए उसके स्थान पर अपने दिव्य–आविर्भाव को स्थापित करते हुए एक दिन स्वयं ही हमारे हृदय में समा जाते हैं, अर्थात् यदि हमारे ध्यान में उनकी प्रतीक्षा भी भर जाये तो वे कितनी महती कृपा प्रदान करते हैं।

इतना ही नहीं, वे दिव्य–आविर्भाव का प्रमाण भी हमें अनुभूति के रूप में प्रदान करते हैं कि हम अपनी दशा के बारे में उन्हें यह लिख ही देते हैं कि "अब तो स्वयं को देखने में ऐसा लगता है कि मैं अपनी जगह आपका ही दैविक आविर्भाव पाती हूं।" आप यह तो अवश्य जानना चाहेंगे कि इसके उत्तर में उन्होंने मुझे क्या लिखा? बस एक वाक्य था कि जिसके अर्थ की गहराई को नापा नहीं जा सकता है। लिखा था कि "यह तो हमारे लाला जी की ही खूबी है कि जब चाहें जिसे उठाकर दिव्यता की सीमा प्रदान कर देते हैं " किन्तु शब्द 'सीमा' ही का प्रयोग क्यों हुआ था उनके पत्र में आप यह भी जानना चाहेंगे; तो सुनिये केवल इसलिए कि अभी यह दशा तो मात्र सारूप्यता की थी। आध्यात्मिकता की चरम सीमा तो नहीं थी। इतना ही नहीं, दूसरा प्रमाण उनकी कृपा ने अनुभूति द्वारा मुझे यह भी दर्शाया कि उनकी मौजूदगी का ही प्रभाव था। मेरा मन–प्राण सतत् उनकी प्राणाहुति–धारा में डूबे हुये थे।

अब मैं अपने होश को भी कहाँ से लाऊं जिसकी प्रतीत से मैं उन्हें हालत के रूप में आध्यात्मिक–प्रगति शब्द का प्रयोग लिख सकती क्योंकि सम्पूर्ण में तो वे समाये हुये थे। अब दशा को वे इससे भी एक डग आगे निकाल ले गये थे। ऐसा लगता था कि अपने बाहर–भीतर, सम्पूर्ण ब्रह्मांड में मुझे सदैव अब वे ही मौजूद दिखाई पड़ते थे।

वास्तव में मैं इतना ही समझ पाई हूं कि समस्त के लिए उनका प्रेम कितना व्यापक है। इस ईश्वरीय–विराट्–दर्शन में वे कभी मुझे स्वयं के डूबने का एहसास देते तो कभी फैलाव की अनुभूति प्रदान करते और कभी फिर इन दशाओं की अनुभूति को भी उनमें ही लय हुआ पाती थी।

वास्तव में अब मैं सहज–मार्ग की व्यापकता को कुछ–कुछ समझने लगी हूं कि वास्तव में यह कोई मार्ग नहीं है जिसमें हम चल रहे हैं बल्कि यह तो युग की पुकार है जो सहज–मार्ग के रूप में हमारे समक्ष फैली हुई है जिसमें मात्र अब इस विराट–दशा में प्रवेश पाकर मुझे ऐसा लगा कि हम तो वास्तव में इसमें चल नहीं रहे हैं बल्कि इस दैविक–धारा में हम स्वतः ही बहते हुए चलते जा रहे हैं। अब आज मैं यह लिख पाने को विवश हूं कि सहज–मार्ग में वास्तविक–प्रवेश तो मुझे अब मिला है।

अब जो दशा मैं लिखने जा रही हूं, उसकी प्राप्ति पर ही हम कह सकते हैं कि आप हमें प्राणों से भी प्यारे हैं। वह दशा है कि जब अपनी हर श्वांस में हमें 'उनके' ही प्यार के स्पर्श की अनुभूति मिले और हृदय की धड़कन उनमें इस तरह से विलीन हो जाये कि उनकी प्राणाहुति का प्रवाह हमारे प्राणों में ही प्रवाहित हो ऐसी प्रतीति होने लगे।

मेरे बाबूजी, हम तो संसार में आकर बहक गये थे तभी तो आप हमें पुनः जगाने के लिए पृथ्वी पर देदीप्यमान हुये और हमें अपनी शरण देकर कृतार्थ किया और अब? ध्यान में हमारा हर पल इस प्रकार से डूब गया है कि हम ये कह पाने में समर्थ हैं कि अब मैं योगी हो गई हूं।

आज यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही है कि लगता है हमने स्वयं को ही धोखा दे दिया है क्योंकि आज आत्मिक–दशा मुझसे कह रही है कि तुम्हारी नज़र तुम्हें ही पहचानना भूल गई है अर्थात् तुम्हारी दृष्टि ने तुम्हारे ही साथ में ऐसी मनमोहक बेवफ़ाई की है।

मेरे बाबूजी! आपकी संध्या अब यही प्रार्थना करती है कि इस सांसारिक उम्र की आपको नज़र न लगने पाये कि आप अब इतने वर्ष के हो गये, जिससे हम भी बेसुध हुए, खोये हुये आपका दैविक–गुणानुवाद गाते हुये बेसुध ही चलते जायें।

मद्रास में ता: 30-4-95 पर दिए गए भाषण का सारांश

मुझे मेरे हिन्दी भाषण का सारांश लिखने की इसीलिये आवश्यकता हुई कि लोग अभी से इसका गलत अर्थ लगाने लगे हैं।

आज मेरे बाबूजी अर्थात् श्रीरामचन्द्र मिशन की पचासवीं वर्षगाँठ का महोत्सव बड़े ज़ोर-शोर से मनाया जा रहा है। मैं भी आज्ञा लेकर आज आप सबके सन्मुख कुछ बोलने के लिये आगई हूं। इधर वर्षों से मेरे प्रति जो आपके आक्षेप आक्रोश एवं इस भाव का जो आपने अपने मास्टर चारीजी को मेरे द्वारा पीड़ा पहुंचाने का रक्खा है, समाधान स्पष्ट कर दूं ताकि फिर आप पूरी तरह से अपनी साधना में जुट सकें। मैंने कभी भी इनके लिये कोई अप-शब्द मुख से नहीं निकाला है एवं इनके प्रति कभी भी ज़रा सी उपेक्षा का भाव जी में नहीं आने दिया। जानते हैं क्यों? मात्र इसीलिये कि ये बाबूजी के बनाये उनके रिप्रेजेन्टेटिव एवं मिशन के प्रेसीडेंट हैं। वास्तव में बाबूजी ने इनके डिकलेयरेशन के लिये कहा ही नहीं था किन्तु जो उनका बनाया हुआ चारी का सौंदर्य था उसे भी उन्होंने मुझे बताया था जिसे चारीजी तक नहीं जान सके हैं। यही कारण है कि इनके स्नेहवश मैंने इनके प्रति वे सारे कर्त्तव्य खुद ही ले लिये जिन्हें मैंने आज तक जी से निभाया है। चाहे ये विदेश गये हैं। या भारत में हैं। हवाई जहाज तक में जब और जहाँ भी कठिनाई आई है अपने बाबूजी महाराज की शक्ति से तुरन्त ही इनकी सुरक्षा का पूरा कर्त्तव्य निभाया है। आप सब आराम से सोते रहे और मैं सदैव जागती रही। जीने से उतरते समय पैर फिसल कर इनके पैर में फ्रैकचर हुआ उस समय भी ये बच सकते थे यदि इन्हें यह ख्याल रहता कि मेरी बहिन सदैव मेरे साथ मेरी सुरक्षा के लिये मौजूद है। आप सब लोगों ने तो खुशामद को ही लेकर इस बात का यों प्रचार किया कि मास्टर इतने ऊंचे लोक में कार्य कर रहे थे कि इन्हें होश ही नहीं रहा और ये गिर गये।

ऐसे ही प्रचार मैं बराबर ही सुनती रही हूं किन्तु उन चारीजी को जिन्हें मेरे बाबूजी ने बनाया था उसे ख़ुद ये चारीजी भी नहीं जान पाये हैं इसका मुझे दुःख ज़रूर है। आप सब वर्षों से इस प्रचार में तो लगे रहे कि जो कुछ मिलेगा इनसे ही मिलेगा किन्तु ऐसा बनकर किसी ने भी नहीं बताया कि क्या मिलेगा। मैंने हमेशा यही कहा है क आप लोगों के बनाये चारी को मैं नहीं **मानती** हूं मैं तो अपने बाबूजी के बनाये चारीजी को ही **जानती** हूं। आप लोगों ने कुर्सी पर बैठे चारीजी की ओर इशारा करते रह कर मानों इनकी एक प्रतिमा सी बना ली और खुद पुजारी (वरशिपर) बन कर रह गये। मैंने बहुत प्रयास किया कि आप सब श्री बाबू जी के प्रति प्रेम, भक्ति एवं लय-अवस्था प्राप्त करें किन्तु आपने मेरे इस आंतरिक-भाई चारे के भाव को समझ पाने का भी प्रयास नहीं किया वरन् ये चारी की विरोधी है ऐसी संज्ञा दे दी। इतना ही नहीं इधर वर्षों से कितने अप-शब्दों एवं आक्रोश और धमकी भरे पत्र अभ्यासियों के द्वारा मुझे मिलते रहे हैं किन्तु मैं सबको पीती रही क्यों कि मैं अपने बाबूजी के बनाये चारीजी की ममता नहीं तोड़ पाई। मुझे इनकी तरफ़ से भी इस बात में कोई सहारा नहीं मिला वरन् आप सबका मास्टर होने के नाते इन्होंने सदैव आपकी बातों को सत्य माना। आप सबके पत्रों के आक्रोश, आक्षेप और क्रोध भरी भाषा के प्रयोग के बारे का ज़िक्र इनसे कहा भी लिखा भी, जनरल सैक्रेटरी सार्नाडजी और जोनल

सैक्रेटरी वाई. के. गुप्ताजी से भी कहा किन्तु किसी ने भी मुझे समवेदन भरे शब्दों का सहारा भी नहीं दिया। शायद यही कारण है कि सन् 1995 के बसन्तोत्सव से मानों मेरे अंतर में एक शक्ति ज़ोर मार कर कुछ बोलने को व्यग्र हो उठी थी। इस परम–शक्ति की व्यग्रता का मैं कैसे अब तक अपनी ओर से अनदेखा करती हुई अपने श्री बाबूजी महाराज के पावन जन्मोत्सव आने के इन्तज़ार तक सहन करती रही यह मैं स्वयं भी नहीं जान सकी हूं। किन्तु आज अपने श्रीबाबूजी के बनाये चारीजी के वास्तविक–स्वरूप ने जब इनके प्रति मेरे ममत्व को ललकारा है तभी आज इन चारी के सन्मुख ही मेरे अंतर में मालिक श्रीबाबूजी की परम–शक्ति मुझे कुछ बोलने के लिये डायस पर ले आई है क्यों कि खुद ये भी तो मेरे भाव को नहीं समझ पाये कि "मैं उस चारी को जानती हूं जिन्हें मेरे बाबूजी ने बनाया है, किन्तु जिस चारी को इनके शिष्यों ने बनाया है उन्हें मैं नहीं मानती हूं किन्तु ये मानते हैं"। इसीलिये शायद इनके प्रति जो भी कर्त्तव्य चाहे इनकी हर प्रकार की सुरक्षा के हों चाहे अपने श्री बाबूजी के वर्क के हों आज तक मैंने बराबर इनके साथ रहकर निभाया है। इसे न तो आप सबने ही जाना और न ये ही जान पाये हैं। आज इनके प्रति निभाये सारे कर्त्तव्य मैं आप सबको सौंपती हूं आप जैसे चाहें इसे पूर्ण करें। मेरी विदाई जो आप लोगों से मैंने माँगी है उसका भी सही अर्थ आप नहीं समझ पाये और गलत अर्थ लगाने लगे। इसीलिये अपने भाषण का सारांश लिखना मेरे लिये ज़रूरी हो गया है। विदाई तो मैंने आप सबसे ही माँगी है और आपके बनाये हुये चारी जी से जो हमारे समक्ष विराजमान हैं। आप सबका रोष और इनकी पीड़ा कस्तूरी के नाम से बढ़ती जाये यह बात मुझे असहनीय हो गई। यहाँ तक कि मेरे यह कहने पर भी कि "कोई चीज़ ऐसी नहीं बनी जो आपको चोट पहुंचाये" इतना भारी आश्वासन देने की शक्ति एवं क्षमता भरी अपनी इस बहिन पर भाई चारीजी का विश्वास करना तो दूर रहा वरन् वे मुझे अपने से दूर ही समझते रहे। अब आपसी भौतिक–व्यवहारिकता की तो बात और है किन्तु अब आप सब भाईयों के लिए मेरा यह कथन स्पष्ट हो गया है कि मेरे पास पूजा के लिये आने वाले लोग यही समझ कर आयें कि आप सबको जो भी प्राणाहुति–शक्ति मिलेगी वह मेरे बाबूजी, जो अल्टीमेट रियेल्टी अर्थात् भूमा की आदि–शक्ति के प्रतीक हैं, से ही मिलेगी, और मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं तो पहले ही कह चुकी हूं कि मैं तो आध्यात्मिकता को भी नहीं जानती हूं मेरे जी को बाबू जी इतने अच्छे लग गये कि मेरा जी बाबूजी को लेकर कहाँ छुप गया और ध्यान मग्न हो गया इसका पता दिलाते हुये मेरे बाबूजी मुझे कहाँ तक ले गये हैं और कहाँ ले जायेंगे मैं नहीं जानती हूं। आप सबसे विदा लेने के मेरे कथन का वास्तविक अर्थ यह है कि आप सब अपने विचार एवं हृदय से मुझे विदा कर दें और इसके स्थान पर अपनी आध्यात्मिक–उन्नति का ही ध्यान रक्खें जिसके लिये आप सबने मिशन एवं मास्टर को अपनाया है।

आज अपने बाबूजी से मेरी यही प्रार्थना है कि चारीजी चिरंजीवी होकर आप सबकी आध्यात्मिक–सेवा कार्य करते रहें और श्री बाबू जी के ध्यान में रहते हुये मिशन के कार्य में सदैव कार्य–रत रहें। धन्यवाद।

कस्तूरी चतुर्वेदी

ता: 30.4.1995

GIST OF MY SPEECH AT MADRAS ON APRIL 30, 1995.

I had felt the necessity of providing a brief of my speech delivered in Hindi at Madras, on April 30, 1995 because many of us, who gathered at the celebration and met me afterwards, had misinterpreted it. Hence, by way of clarification I am giving the gist of the same in English.

Dear brothers and sisters, today we are celebrating, with greater enthusiasm the 97th Birthday of our beloved Rev. Shri Babuji Maharaj the Founder President of the Mission and also the Golden Jubilee year of Shri Ram Chandra Mission, founded by Him. With the permission of the president and my brother Shri Chariji I am before you to express my views. In fact since past many years I have been receiving many letters and statements levelling many charges against me and expression of the feeling with anger that Iam causing some pain to your Master Shri Chariji's So, today, I intend to avail this opportunity to make this position crystal clear and offer to you the solution so that you may henceforth get fully involved without least diversion, in pursuance of your sadhana.

Dear brothers and sisters you must know that I had never uttered a single word against him and also never allowed in my inner to germinate or perpetuate even the slightest thought of disrespecting and ignoring him in any way and at any moment. Can you imagine, why not? Merely because he has been prepared by Shri Babuji Maharaj as His spiritual representative and president of Shri Ram Chandra Mission Shahjahanpur.

The truth is that Shri Babuji Maharaj not only told me Sri Chariji's declaration as President but also about the Divine beauty with which He adorned him. Sri Chariji himself could not even understand what to say of adjusting it. It is on account of this that out of love and affection for him I had on my own assumed all the duties and responsibilities for him. Shri Babuji Maharaj never asked me to do so. Ever since his declaration as President I have been discharging these duties wholeheartedly irrespective of the fact whether he is aware of it, recognises it or not. Whether he was here or abroad, in the plane or any where else, with the power bestowed by Shri Babuji Maharaj I had provided to him instant protection. While all of you were sleeping I was awake and in vigilant condition. While coming down the stairs when he slipped and got his leg fractured then also he would have been saved if he would have possessed this thought that 'my sister is with me for my protection.' At

that time you all had propagated, just to flatter him, 'Master was working at such a higher level that he was not conscious of himself and hence had a fall.'

I have been hearing similar propaganda continuously but that Chariji, whom my beloved Shri Babuji Maharaj adorned with divine beauty, I am pained to say, could not be identified and understood by my brother sitting with us. Since pretty long years you all have been busy in making only this propaganda that 'whatever one can get in spirituality, can only get it from Chariji' No one had, however, dared to become that which he can make and then demonstrate what one will get from him. On my part I had always emphasised that I cannot accept Chariji whom you have made through your propaganda. I only know Sri Chariji whom Shri Babuji Maharaj had prepared for your help and guidance. While I looked him in his inner, you have taken him only physically-sitting in the chair, like an idol and praised him like his disciple-a worshipper instead of being a true follower. It is just like a pujari in the temple employed to offer regular puja to the idols in a mechanical way and attend to devotees, getting in return just a few coins etc totally devoid of love, devotion and craving for Layavasta.

I had always tried my level best through my speeches on various occasions and sittings to inculcate in you love, devotion and surrender and thereby attain layavasta, you have not cared to understand my inner feeling of love and brotherhood. Instead of it I have been signified as opponent of Chariji. Not only this. I have been receiving letters since the past few years from abhyasis full of unhealthy and threatening words. but I have swallowed it all silently because I could not break loving ties with that Shri Chariji whom Shri Babuji had adorned. Of course when it went beyond tolerance and I could not get occasion, I had conveyed the contents of the unwarranted and provocative harsh letters, orally as well as in writing to Shri Chariji, to Shri Sarnadji, the Gen. Secretary and also to Shri Y.K. Gupta, the Zonal Secretary, but to my surprise, no one had even cared to sympathise with me. No consolation or reaction even from Shri Chariji, probably as President he has always taken your statements as true.

It was perhaps on this account that since 1995 Basant utsav, the Divine power of Shri Babuji Maharaj in my inner, has constantly been forcing me to speak to you and I just cannot describe how I had contained that intense force until this day of Shri Babuji's Birth day celebration-I do not know how I could bear that force.

Today that real form of Shri Chariji as adorned by my Shri Babuji Maharaj has returned and rejuvenated the intensity of my love and affection towards him, as a consequence, that Divine Power of Shri Babuji Maharaj dwelling in my inner has brought me on the dias to speak something in his presence. I am pained to say that Shri Chariji himself could not correctly understand the real implications of feelings when I said, 'I know only that Chariji who was prepared by Shri Babuji Maharaj and I don't accept this Chariji whom his disciples have made.'

Probably on account of this whenever and whatever I desired to do either for his protection or for promotion and spread of Shri Babuji's work I had performed it to my level best, remaining with him, but this humble service of mine was not taken in the correct perspective either by him or by you all. Today in this large gathering of about 12000 abhyasis participating in the celebrations, I delegate all my responsibilities and duties to you all. You come forward and perform the same in the manner you like.

In my speech I had asked for my "BIDAI" (farewell) from you all and from Shri Chariji whom you have made and is sitting with us. I cannot tolerate anymore your growing grudge and anger against myself and his pain on account of Kasturi's name. Hence I said,'bid farewell to me from your mind and heart, forget Shri Babuji Maharaj who has made him and remember only him.

So much so that when I had assured him, with full confidence in my Babuji's Power, 'that no such thing has been made which can hurt you', even then instead of relying upon his own sister's assurance, Chariji had continued to treat me at a distance. But beware I am not talking of worldly relations and physical comforts and courtesies-that has a quite different level and sphere.

But I wish to make clear one more point which I had missed in my speech ie., you should come to me for sittings etc. with a clear understanding that whatever Divine Transmission you will get, it will be only from my beloved Shri Babuji Maharaj the representative of the Ultimate Reality-the Bhooma. I have nothing with me excepting Him. I have already spoken on occasions that I don't know spirituality, My inner simply took Shri Babuji Maharaj in the core at His first sight (darshan) and got lost in His remembrance somewhere. It was to trace it that Shri Babuji Maharaj took me somewhere. He will take me still but where I don't know.

Again I emphasise that the true meaning of my taking 'Bidai' (farewell) from your inner and thoughts is to remove me from there and in place you instal the goal of your spiritual advancement for which you all have joined the Mission and the Master.

It is my earnest prayer to Shri Babuji Maharaj that Shri Chariji may live long remaining in remembrance of Shri Babuji and provide spiritual service to you all and always work up for the development of the Mission.

Thanking you,

Date : 30.04.1995 **KASTURI CHATURVEDI**